कमला रत्नम्



लाओस में रामकथा

लाओस में रामकथा

लाओस में रामकथा

श्रीमती कमला रत्नम्

मानस संगम, कानपुर

प्रकाशक : बद्री नारायण तिवारी, मानस संगम, कानपुर /
 प्रथम संस्करण : १९८० /
मूल्य : अठारह रुपये / मुद्रक : रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

अनुक्रम

लाव-संस्कृत शब्द सूची

लाव	संस्कृत
नांग अत्चना	देवी अञ्जना
फ्रा अथित	प्रिय आदित्य (सूर्य)
फ्रा चाओ अनुरुट्	प्रिय राजा अनिरुद्ध
अयुध्या	अयोध्या
आस्सोम	आश्रम
फा इन	प्रिय इन्द्र
इन्तजीत	इन्द्रजित्
इन्थपत्थनखोन	इन्द्रप्रस्थनगर
कायसी	कायश्री
कुक्कुटवदी	कुक्कुटवती
कुंभकात	कुंभकर्ण
कुंभकान	कुंभकर्ण
केत केओ चुल्लमनि	केश मरकत चूडामणि
कैकेसी	कैकेयी
खाइसी	कायश्री
खिटकिन	किष्किन्धा
खूखान	—
चाओ चन्तरात	राजकुमार चन्द्रराट्
फा चान	प्रिय चन्द्र
छनक	जनक
तोतम	गोतम
थट्टरथ	दशरथ
थेव	देव
थेवता	देवता
थोरफ	दुन्दुभ
थोरफी	दुन्दुभि

थोसोकोन्थो	दशकण्ठ
थोसोरोथ	दशरथ
फा नाराइ	प्रिय नारायण
नांग	देवी
नोकोर्न थोम	सुवर्ण नगर
नोखोन	नगर
नोन्थोक	नन्दक
डाला	तारा
पात्थना	प्रार्थना
पाटरिबुद	पाटलिपुत्र
फन्या खोन	एक धनी यक्ष (संभवतः कुबेर)
फा	प्रिय
फा फाइ	प्रिय वायु
फाली	बाली
फाली चान	बाली चन्द्र
नांग फी सिआ समुद	रावण की मित्र एक यक्षिणी जो लंका के निकट के समुद्र की रक्षा करती थी।
फोङ सी	वंश श्री
फोथि सारथ	बोधिसार्थ
फा फ्रोत	प्रिय भरत
फा फ्रोट	प्रिय भरत
बिभेक	विभीषण
मनिकोथ	मणिग्रोध
महाफोम	महाब्रह्मा
मारीस	मारीच
मुन्थो	मन्दोदरी
मोन्थो	मन्दोदरी
मे कांग	मां गंगा
यक्मिनी	यक्षिणी
रिसि	ऋषि
लङ्का	लंका
फा लाक	प्रिय लक्ष्मण
फा लाम	प्रिय राम
वाट	स्थापत्य, मन्दिर

वाट ऊप मुओङ	भूगर्भ मन्दिर
वाट पऽ केऽ	—
वाट माइ	नवीन मन्दिर
वाट विसुन	विष्णु मन्दिर
फा सत्रु	प्रिय शत्रुघ्न
सी सनोक	श्री जनक
सटायु	जटायु
सम्पोत	थाइ-लाव धोती (पुरुषों का अधःपरिधान)
समनखा	शूर्पणखा
समुत्थसा	समुद्रजा (सुमित्रा का एक नाम)
सरफू	सरयू
सवन	स्वर्ग
नांग सवाहा	देवी स्वाहा
स्वामित	विश्वामित्र
साङ्खीप	सुग्रीव
सिउ हान	विद्युज्जिह्व का एक रूप
सीडा	सीता
सुक्रीप	सुग्रीव
सुवन्नपथेट	सुवर्णप्रदेश
नांग सुसादा	देवी सुजाता
सूरिय	सूर्य
सेत्थ थीरथ	श्रेष्ठ तीर्थ
हनुमोन	हनुमान
हाफन सुआन	रावण असुर
हुएन तियेन	कौण्डिन्य
हुल्लमान	हनुमान

समर्पण

भारतवासी जहां भी गये अपने साथ पवित्र रामायण-कथा को अवश्य लेते गये। उपनिवेशवादी काल में जब भारतीय मज़दूरों को मारीशस-द्वीप ले जाया गया तब वहां उनके सुख-दुःख की साथी यही रामायण की पोथी थी। रामायण से मारीशस-वासी अपना एक और सम्बन्ध जोड़ते हैं। विश्वामित्र के आश्रम के निकट, श्रीराम ने जब मारीच राक्षस को बाणविद्ध किया, तो वह मरा नहीं। बाण के वेग से उड़ता हुआ समुद्र के बीच जा गिरा, वही मारीच अब मारीशस द्वीप है।

मारीशस-देश के वर्त्तमान वाणिज्य एवं उद्योग-मन्त्री माननीय श्री दयानन्द-लाल बसन्तराय की सेवाएं हिन्दूधर्म, रामायण ग्रन्थ तथा हिन्दी के लिए अनन्य हैं। अपने देश में उन्होंने हिन्दू धार्मिक चेतना के पोषण और विस्तार के लिए बहुत कार्य किया है। १९७६ में अपने देश में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन करके उन्होंने भारतीय मूल और उसकी सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की नींव को बहुत मजबूत किया और भारत-मारीशस मैत्री को दृढ़ बनाया। अब भी वे समय-समय पर उसी प्रेम और निष्ठा से भारतयात्रा करते रहते हैं जैसे विदेश में रहने वाली सन्तान स्नेह से खिची अपने पैतृक-गृह में आती रहती है। हाल ही में प्रयाग में हुए विश्व-हिन्दू-सम्मेलन में भी उनका योगदान अविस्मरणीय रहा। उन्हीं की प्रेरणा से मारीशस में विशाल हनुमान-मन्दिर बनकर तैयार हुआ है, जहां १९८० की महाशिवरात्रि के दिन चार मीटर ऊंची संगमरमर की भारत में निर्मित प्रतिमा स्थापित हो रही है।

ऐसे बृहत्-भारत मां के सुयोग्य लाड़ले हिन्दीनिष्ठ बेटे श्री दयानन्दलाल बसन्तराय को 'लाओस में रामकथा' की यह पुस्तक सादर सस्नेह समर्पित है।

बद्री नारायण तिवारी,
मानस संगम, कानपुर

श्री प्रयागनारायण मंदिर
(शिवाला), कानपुर २०८००१
दिनांक २३, दिसम्बर, १९७९

प्राक्कथन

वल्मीक के अग्रभाग से निकलकर जैसे आखण्डल का धनुष समूची पृथ्वी और आकाश को छू लेता है, वल्मीक से जन्मे महर्षि वाल्मीकि ने भी उसी प्रकार समस्त जगत् के मनों को एक सेतु से जोड़ दिया है। रामायण के उस अमर प्रणेता को मेरा शतशः प्रणाम।

१९७३-७४ में मैंने रघुवीर-स्मारक ग्रन्थावली में लाओस के भित्तिचित्रों पर आधारित रामायण-कथा अंग्रेजी में अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों के लिए प्रकाशित कर दी थी। १९६७ में जकार्त्ता छोड़ते समय हम लोगों ने जकार्त्ता विश्वविद्यालय की एक संगोष्ठी में रामायण-देशों की एक विश्व-सभा बुलाने का प्रस्ताव रखा था। यूरोपीय उपनिवेशवाद के तीसरे और अन्तिम पंजे, सांस्कृतिक अधिशोषण का मुकाबला करने के लिए ऐसा करना जरूरी था। प्रस्ताव सबको पसन्द आया, और अभी हमारे देश की लालफीताशाही भारतीय राजदूत के प्रस्ताव पर विचार कर ही रही थी कि रामायण के प्रति अति उत्साही इन्दोनीसिया में प्रथम रामायण-सम्मेलन सम्पन्न हो गया। उसके एक वर्ष बाद जकार्त्ता का अनुसरण करते हुए किञ्चित् लज्जाभाव से हमारी साहित्य अकादमी ने दिसम्बर १९७५ में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय रामायण-सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में ६० से अधिक देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और अपने-अपने देश में प्रचलित रामकथा का परिचय दिया। 'लाओस की रामकथा' को सम्मेलन में प्रस्तुत करने का अवसर मुझे भी मिला। इस कथा की बच्चों जैसी ताज़गी और जीवन्तता से सम्मेलन प्रभावित हुआ और विश्व-विख्यात प्राच्यविद् डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या तथा प्रख्यात संस्कृतज्ञ डा० वे० राघवन् ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

१९७७ में पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जब हमारे घर पधारे तो मैंने उन्हें अपनी कृति दिखाई। उन्होंने इसे तुरन्त हिन्दी में प्रस्तुत करने के लिए कहा, क्योंकि पड़ोसी एशियाई देशों के आपस में परिचय और सद्भावना के लिए इन सब देशों में प्रचलित 'रामकथा' रामबाण उपाय है। मुझे हर्ष है कि मानस-संगम, कानपुर के पं० बद्रीनारायण तिवारी की साहित्यिक सुरुचि, हिन्दी प्रेम और सर्वोपरि रामभक्ति के कारण यह पुस्तक उनकी विशेष आर्थिक सहायता से इस

रूप में प्रकाशित हो सकी। पुस्तक में वर्णित कथा का आधार लाव-देश के मन्दिरों की भित्तियों पर आंके गये चित्र हैं, फलतः प्रस्तुत विवरण में इस कथा के दृश्य और श्रव्य दोनों रूप समाहित हो सके हैं। ऊपर से उनमें लाव-विद्वानों की सहज भक्ति-प्रवणता का पुट भी आ गया है। कथा को पढ़ते समय लगता है कि कोई अत्यन्त सरल, निश्छल बालसमूह इस कहानी को हमें सुना रहा है। रामायण-पात्रों के नामों के लाव-उच्चारण भी बच्चों के अटपटे तुतलाते स्वरों की याद दिलाते हैं।

इस पुस्तक की भूमिका भारतीय संस्कृति के निवासस्थल डा० विद्यानिवास मिश्र ने लिखी है। वे हाल ही में दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों का भ्रमण कर चुके हैं, और इन देशों में फैली रामायण की सांस्कृतिक छटा का व्यक्तिगतरूप से अवलोकन कर चुके हैं। उनकी भूमिका से पुस्तक का गौरव बढ़ा है। पुस्तक के प्रणयन में पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, पं० बद्रीनारायण तिवारी तथा कुशल मुद्रक श्री सन्तोषकुमार का विशेष योगदान है। पुस्तक को रात-दिन जागकर, अपनी चोट-खायी उंगली की पीड़ा को मनोगत न करते हुए श्री भारत प्रकाश भाटिया ने न्यूनतम समय में टंकित किया है। इन सबके प्रति मैं आभारी हूं।

कारणवश मुझे भी इस कथा को केवल दस दिनों में ही पूरा करना पड़ा। यह सब भवदुःखभंजन श्रीराम की कृपा से ही हो सका, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

—कमला रत्नम्

'ईशान'
एफ़ १/७, हौज खास
नयी दिल्ली-११००१६
पौष कृष्णा सप्तमी, सं० २०३६
(१०-१२-७९)

भूमिका

रामकथा ने अनेक देशों को रमाया। इसकी सबसे पुरानी यात्रा भारत के बाहर श्रीविजय (प्राचीन सुमात्रा) में हुई और जावा के शैलेन्द्रों के राज्य में जावा की कवि भाषा में पहला सुव्यवस्थित रामकाव्य लिखा गया। शैलेन्द्रों का प्रभाव राजनीतिक और व्यावसायिक स्तरों पर मलय, थाइ-देश और कम्बोज पर पड़ा, इसलिए रामकथा वहां भी पहुंची। रामकथा के हिन्देसियायी (अर्थात् जावाई) रूप में मूल कथा से बहुत कम अन्तर है, पर थाइ-देश और पार्श्ववर्त्ती लाओस में एकसाथ सदियों के सांस्कृतिक विसरण के परिणामस्वरूप अनेक परम्पराएं घुली-मिलीं और उत्तरवर्त्ती परम्परा बौद्ध धर्म के महायान और स्थविरयान (हीनयान) दोनों से तो प्रभावित हुई ही, प्राचीन चम्पा की वैष्णव और ख्मेर साम्राज्य की शैव-बौद्ध परम्पराओं से भी संस्पृष्ट हुई। थाइ-रामकथा पर जैन और बौद्ध राम-कथाओं की छाप पड़ी, कम्बन् रामायण की छाप पड़ी, और इसके साथ ही अपनी राजनीतिक परिस्थितियों की छाया भी उसमें उतरी, जिसके कारण थाइ-राजा ने 'राम' विरुद धारण किया, थाइ-राजकुल ने रामचरित के अभिनय की दीक्षा लेनी शुरू की। थाइ-रामायण (वहां की भाषा में रामकियेन) एक प्रकार से थाइ-देश की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रतीक बनी और जब लाव-लोगों ने अपने को थाइ-प्रभुत्व से मुक्त करना चाहा तो उन्होंने भी अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को आकार देने के लिए रामकथा की शरण ली।

श्रीमती कमला रत्नम् दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में लम्बी अवधि तक अपने राजदूत पति के साथ रही हैं, उन्होंने बहुत निकट से इन सभी संस्कृतियों का अध्ययन किया है। उनकी 'लाओस में रामकथा' पुस्तक इस संस्पर्श के कारण केवल कथा ही नहीं, कथा की रसानुभूति भी है। लाओस की रामायण का प्रकाशन लाव-लिपि में भारतीय सांस्कृतिक सम्पर्क परिषद् ने कराया है और इसका संपादन डा० सच्चिदानन्द सहाय ने किया है। यह लिपि थाइ-लिपि से कुछ-कुछ मिलती-जुलती है और भारत की पल्लव-लिपि का ही विकसित रूप है। डा० सहाय ने इस ग्रन्थ की भूमिका में संक्षेप में अंग्रेजी में इस रामायण की कथावस्तु दी है। लाव-रामायण का नाम है 'फ्रा लाक फ्रा लाम'। इस रामायण के और भी रूप लाव-भाषा में हैं, पर यही सबसे अधिक पूर्ण और परिपक्व है। इनमें से एक कथा की संरचना बौद्ध-जातक के रूप में है। राम तथागत के एक बोधिसत्त्व के रूप में अवतीर्ण हुए। इस कथा-काव्य का पूर्ण विकसित रूप १८५० में लिखा गया, पर मूल रूप में यह प्राचीन जान पड़ता है, श्री सहाय ने अनेक तर्क देकर यही निष्कर्ष निकाला है।

श्रीमती कमला रत्नम् ने अपनी पुस्तक में पहले लाओस का ऐतिहासिक-

भौगोलिक परिचय सरस ढंग से दिया है और फिर उन्होंने लुआङ प्रबाङ (तत्कालीन लाव-राजधानी) की भित्तिचित्र-वीथी के वर्णन के ब्याज से लाव-रामकथा का क्रम समझाया है। रामकथा की ऐसी ही चित्रवीथी के अन्तर्गत थाइ-देश में बैंकाक नगर के एक बौद्ध मठ (मरकत-बुद्ध मन्दिर) में चित्र अंकित कराए गये। श्रीमती कमला रत्नम् ने लुआङ प्रबाङ के वाट माइ (वाट = मठ) और वाट पऽ केऽ की चित्रवीथियों का अंकन-काल १८०० ई० के आसपास बतलाया है, इससे लगता है कि थाइ राजा को लुआङ प्रवाङ से ही प्रेरणा मिली।

श्रीमती कमला रत्नम् की प्रस्तुति दृश्य-लीला के द्वार से होने के कारण बड़ी जीवन्त है और यह इंगित करती है कि रामचरित सुनने की नहीं देखने की, भर-आंख, भर-मन देखने की वस्तु है, क्योंकि वह मानवीय सत्त्व-गुण का सार है।

श्रीमती रत्नम् तो लाओस के राजतन्त्र-युग में गयी थीं, मैं सर्वहारा युग में गया, पिछले वर्ष। वहां के सांस्कृतिक मन्त्रालय ने सीताहरण प्रस्तुत कराया और कहा कि राम तो सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के प्रतीक हैं,गुरिल्ला-युद्ध के जन्मदाता हैं, रावण पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक है। श्रीमती रत्नम् के अनुभव से अपने अनुभव को मिलाता हूं तो पाता हूं कि राम का अन्तःस्वरूप नहीं बदला है। राम की लीला मनुष्य के उन्नयन की आकांक्षा में है, अधर्म के पराभव के लिए दृढ़ संकल्प और निशित प्रयत्न में है और इस प्रयत्न के पीछे सीता का एकनिष्ठ प्यार है।

राम हिन्दू के लिए ही नहीं, किसी धर्म वाले के लिए, आस्तिक-नास्तिक सभी के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं, क्योंकि वे पुरुषोत्तम हैं, उनका पौरुष उत्तम कोटि का है, क्योंकि वह दूसरों की त्रस्तों की दलितों की रक्षा के लिए विनियोजित है।

राम के माध्यम से विभिन्न मनुष्य-जातियों के समानान्तर सांस्कृतिक अनुभवों की जब एक झांकी प्रस्तुत की जाती है, तो साझेदारी का सुखद अनुभव होता है। हमारे राम उन सबके हों, जो उन्हें चाहें, जो उनमें अपना उत्कर्ष अवतरित होते देखें, यही आकांक्षा होनी चाहिए, मिथ्या सांस्कृतिक गुरुडम का अभिमान तो छोटा बनाता है।

श्रीमती कमला रत्नम् ने भारतीय विनम्रता का निर्वाह करते हुए यह पुस्तक लिखी है, जो न केवल लाव लोगों की भावना समझने में सहायक होगी, बल्कि अपने को भी एक व्यापक चौखटे में स्थापित करने में सहायक होगी। हिन्दुस्तान एक उदार विचार का मूर्त्तिमान् विग्रह है और राम इस विग्रह के मुखमण्डल हैं। श्रीमती रत्नम् को इस पुस्तक के लिए बधाई देता हूं।

—विद्यानिवास मिश्र

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१९६१ में जब हमने लाओस की यात्रा की तब यह द्वितीय महायुद्ध के विध्वंस से निकला हुआ एक नया देश था। १,४३,००० वर्गमील क्षेत्र-फल के इस छोटे-से देश की दो राजधानियां थीं, वियेन-त्यान जहां से राजकाज चलता था और लुआङ प्रबाङ जहां महाराजा निवास करते थे। उस समय और आज भी लाओस (लाव देश) के इतिहास के सबसे बड़े जानकार महाशील वीर वोङ हैं, स्वभाव से अत्यन्त सरल और सादे। पहले-पहल जब हम उनसे मिलने गये तब वे कच्छा बांधे नंगे बदन अपने छोटे-से बगीचे की खुदाई कर रहे थे। महाशील की आयु अभी अधिक नहीं है, और संभवतया सम्पूर्ण लाओस में वे ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने देश के साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन के संबंध में अधिकृत जानकारी दे सकते हैं। उनके अतिरिक्त बौद्ध-मन्दिरों के भिक्षुओं और राजपरिवार के कतिपय सदस्यों द्वारा कुछ जानकारी पायी जा सकती है, परन्तु यह जानकारी वैसी ही होगी जैसी हमारे यहां की साधारण गृहिणियों से प्राप्त रामायण-विषयक साहित्यिक जानकारी। जिन दिनों महाशील से हमारी मुलाकात हुई, उन दिनों वे अपने ग्रन्थ 'फोङ सवदन लाओ' (लाओस का इतिहास) पर कार्य कर रहे थे। उस समय सत्तासीन सुवन्नफूम और उनके साथियों की सर-कार ने उन्हें इस कार्य के लिए नियुक्त किया था। महाशील के अनुसार लाओस का प्रारंभिक लिखित इतिहास इस प्रकार है, "आजकल लाओस की जो भौगोलिक सीमा है, २५०० वर्ष पूर्व उसमें बर्मा के कुछ भाग, मलाया, थाइलैण्ड, कम्बोदिया और वियेतनाम शामिल थे। उस समय इस क्षेत्र का नाम 'सुवन्नफूम पथेट' (सुवर्णभूमि प्रदेश) था। लाव-भाषा में उसे लायम थोङ अथवा मुओङ सियेङ थोङ' कहते थे। 'मुओङ' का अर्थ है प्रदेश तथा 'थोङ' स्वर्ण को कहते है। इन क्षेत्रों में सोना बहुतायत से पाया जाता था, अतएव लाव-देश को

जनता ने अपनी राजधानी का प्रथम नाम मुओङ क्सियेङ थोङ रखना ही पसन्द किया।"

अपने नाम के ही अनुसार धन-धान्य से सम्पन्न सुवन्नफूम पथेट पृथ्वी के उस बड़े भूभाग को कहते थे जो पानी में सूंड़ हिलाता हुआ किसी मत्त गयन्द के विशाल मस्तक के सामन हिन्द महासागर के बीच फैला हुआ है। इसीलिए योरोपीय देश जब निकट अतीत में यहां अपने साम्राज्य स्थापित करने आये तब उन्होंने इस भूभाग को हिन्द-चीन नाम से सम्बोधित किया।

लाओस : भूगोल तथा प्रारंभिक इतिहास

योरोपीय औपनिवेशिकों ने जिस भूभाग का नाम हिन्द-चीन रखा उसमें हिन्द (भारत) और चीन दोनों संस्कृतियों के मिले-जुले तत्त्व मौजूद थे। इसमें भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले देश थे कम्बोदिया, लाओस, थाइलैण्ड तथा मलयेसिया के कुछ भाग। इन सब देशों की सीमाएं आपस में एक-दूसरे से जुड़ी हुई थीं। इनमें भी लाव-देश के निवासियों के सर्वदा हंसते, सौम्य-प्रसन्न चेहरों में भारत की आत्मा विशेष रूप से झलकती दिखाई देती है। साधारण लाव-स्त्री-पुरुषों के चेहरे प्राचीन सन्तों और भक्तों के सौम्य मुखों की याद दिलाते हैं।

अत्यन्त प्राचीन काल में हिन्द-चीन अथवा सुवन्नपथेट में दो प्रकार की जातियां निवास करती थीं। ये थीं ख्मेरवंशी और लाववंशी। भारतीय इतिहास मे स्पष्ट है कि ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी से भी बहुत पहले भारतीय यात्री हिन्द-चीन पहुंच चुके थे और इस भूभाग को सुवर्ण भूमि से संबोधित भी कर चुके थे। प्राचीन चीनी आलेखों से पता चलता है कि हुएन तिएन नाम का एक भारतीय ब्राह्मण यहां आया और उसने फ़ुनान की राजकुमारी से विवाह किया और वहां हिन्दू-राज्य की स्थापना की। यह स्मरणीय है कि फ़ुनान वर्तमान कम्बोदिया (अब कम्पूचिया) का ही प्राचीन नाम है। आर० सी० मजुमदार के अनुसार एक समय लाओस में भी हिन्दू राज्य था और श्यामदेश (वर्तमान थाइलैण्ड) में भी भारतवंशी राज्य कर रहे थे। यह समय

ईसा से लगभग ६०० वर्ष बाद का था। कम्पुचिया के लोग आज भी अपने-आपको ख्मेर कहते हैं। अपने ग्रन्थ 'फोङ सवदन लाओ' में महाशील लिखते हैं, "ख्मेर जाति प्राचीन भारतीय मूल की है। इसीसे अन्य शाखाएं उत्पन्न हुईं, जिनके नाम हैं ख्मेर, मोन, मेङ, खा, खामु और मलय। भगवान् बुद्ध के जन्म से भी पहले २५०० वर्ष पूर्व ख्मेर जाति सुवन्नफूम पथेट में आकर बस गयी थी। परन्तु सबसे बड़ी संख्या में ये लोग 'अशोक राजा के शासनकाल में आये जो बौद्ध संवत्सर २१८ से २२७ तक पाटरिबुद (पाटलिपुत्र) का राजा था' यह काल ईसा-पूर्व ३२५-३१६ सिद्ध होता है।"

यह तो सर्वविदित है कि सम्राट् अशोक ने कलिंग प्रदेश में भयंकर युद्ध किया था। महाशील के अनुसार, "इस युद्ध से त्रस्त होकर लाखों की संख्या में दक्षिण में रहने वाले भारतीयों ने अपनी भूमि छोड़कर हिन्द-चीन में शरण ली। इस विशाल जनसंक्रमण को देखकर सम्राट् अशोक राजा का मन बहुत खिन्न हुआ, और उन्होंने इस पलायन को रोकने के लिए बौद्ध-धर्म की शरण लेने का निश्चय किया। इसी बीच कम्बोदिया के ब्राह्मण राजा जयवर्मन् तृतीय ने नोकोर्न थोम (सुवर्ण नगर) में ८५७ ईस्वी में पत्थर के एक मन्दिर का निर्माण किया। बाद में १०५७ ईस्वी में एक अन्य ख्मेरवंशी राजा ने उसी शैली और आकार का एक विराट् मन्दिर बनवाया जो आंगकोर वाट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन दोनों मन्दिरों के निर्माण के बीच के २०० वर्षों में ख्मेर राजा बहुत बलवान हो गए और उन्होंने अपनी सीमाओं का विस्तार विसएङ सेन और विसएङ राइ तक कर लिया। यही वह समय था जब लाव जाति के लोग चीन के दक्षिणी भूभागों को छोड़कर नीचे की ओर बढ़ने लगे, और इसी उपक्रम में उनकी ख्मेरों से मुठभेड़ हुई।"

लाव-जाति

महाशील के अनुसार लगभग एक लाख वर्ष पूर्व जिन मानव-जातियों का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ, उनमें लाव-जाति भी थी। लावों के पूर्वज आउ-लाव थे जो चीन की मुख्य भूमि में ह्वांगहो तथा यांग त्सी नदियों की घाटियों में रहते थे। आउ-लावों का मुख्य व्यवसाय खेती

था। महाशील के अनुसार 'लाव' शब्द का अर्थ है—'सभ्य' अथवा 'महान्'।

इसमें सन्देह नहीं कि लावों के पूर्वज अपने पड़ोसी थाइ-लोगों के समान चीनियों से संबंधित थे। परन्तु स्वभाव से हंसमुख, कोमल और शान्तिप्रिय होने के कारण ये चीनियों द्वारा, जो अधिक कठोर और लड़ाकू थे, दक्षिण की ओर धकेल दिये गये। लावों के खिलाफ चीनियों का दबाव इतना बढ़ा कि अन्त में वे अपने वर्तमान देश की केवल ६०० मील लम्बी सीमा के भीतर सिमटकर रहने के लिए विवश हो गये। अपने देश को इन्होंने प्रेमपूर्वक 'सहस्र हाथी और श्वेत छत्र' के देश की संज्ञा दी। लाओस हिन्द-चीन उपमहाद्वीप की मेकांग नदी की उत्तर-पूर्वी घाटियों में स्थित है। मेकांग 'मां गंगा' का ही स्थानीय भाषा में अपभ्रंश रूप है। समस्त देश पठारों और घने जंगलों से ढके पर्वतों से भरा पड़ा है, जहां यातायात के साधन केवल पर्वतीय नदियों द्वारा ही उपलब्ध होते हैं। आज भी भूमिगत यात्रा-साधन यहां बहुत कम हैं। सड़कें नहीं हैं, और रेलों का तो नाम भी नहीं सुना गया है। सबसे निकट रेलवे-स्टेशन नोंग खाइ है जो मेकांग नदी के उस पार थाइलैण्ड की सीमा के अन्तर्गत है और जहां से बैंगकाक के लिए रेल पकड़ी जा सकती है। यातायात के साधनों की कठिनाई तथा चारों ओर भूमि से घिरे होने के कारण लाओस दीर्घ काल से साधारण व्यापार और यात्रा-संदर्भों से कटा हुआ विस्मृति के गर्भ में पड़ा है। और यही सौभाग्य से वह संयोग है जिसके कारण लाओस अपनी संस्कृति को सुरक्षित रख सका। संभवतया लाव-देश के निवासी अपने भारतीय संस्कृति के अनुयायी बाली द्वीप के भाइयों के समान संसार के अन्तिम जीवित लोग हैं जिन्होंने मानव जाति द्वारा अर्जित सर्वश्रेष्ठ मूल्यों और उदार सहृदय मानवीय गुणों को सुरक्षित और जीवन्त रखा है। संसार की अन्य जातियों से उनका अलगाव ही उनकी सांस्कृतिक सुरक्षा का कवच सिद्ध हुआ है। अपनी भारतीय पद्धति की जीवन-चर्या और भगवान् बुद्ध के उपदेशों के प्रति अपनी अबोध आस्था को उन्होंने अत्यन्त कलात्मक ढंग से अपनी कविता तथा अन्य सौन्दर्य-कृतियों में प्रतिबिम्बित किया है। आज जहां विज्ञान और यांत्रिकता के चंगुल में फंसकर

एशिया के सभी देश अपने मूल स्वरूप को भूल चुके हैं, वहां लाओस की सादी-सरल जनता अपने अन्तस में दिन-प्रतिदिन के साधारण रहन-सहन और व्यवहारों द्वारा एक गहरी धार्मिक और जैविक अनुभूति संजोए हुए है जो उसे समस्त विश्व के एक ही सृजन-सूत्र की अव्यक्त भ्रातृत्व-भावना से जुड़े होने के प्रति आश्वस्त रखती है।

प्रारंभिक इतिहास

लाओस का प्रारंभिक राजनीतिक इतिहास बहुत अस्पष्ट है। लोक-स्मृति के अनुसार मध्य कम्बोदिया का प्रथम शासक श्रुतवर्मन् था जो अपने समय में लाओस पर भी राज्य करता था। श्रुतवर्मन् यद्यपि अपने वंश का संस्थापक था, किन्तु उसके पुत्र श्रेष्ठवर्मन् के अतिरिक्त आगे के वंशजों का कोई इतिहास नहीं है। श्रेष्ठवर्मन् की राजधानी श्रेष्ठपुर वाट फू पर्वत के निकट लाओस के बास्साक प्रदेश में थी, ऐसा आर० सी० मजुमदार ने लिखा है। अनुमानतः बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक लाओस ख्मेर साम्राज्य का ही एक अंग था। इसके बाद थाइ जाति ने लाओस के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया। तेरहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते वे दोनों प्रमुख नगरों लुआङ प्रबाङ और वियेनत्यान पर अधिकार कर चुके थे। इसके बाद राजनीतिक उथल-पुथल का दौर चला; अलग-अलग राजपरिवार सत्ता प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे रहे। सुवर्ण भूमि के हिन्दू राज्यों की शक्ति १२८५ ईस्वी के आस-पास क्षीण होने लगी थी, जब चीन के मंगोल शासक कुबलाइ खान ने इसे अपने दक्षिणी अभियान की चपेट में ले लिया। थाइ राज्य के सुखोदय वंश का पतन १३४५ ईस्वी के आसपास हुआ, और अयुथ्या (अयोध्या) में १३४९ में एक नये राजवंश की स्थापना हुई। सुखोदय राजवंश के अयुथ्या की अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण लाओस पर थाइ वासियों का प्रभुत्व कमजोर पड़ गया और लाओस के स्वयं स्वतन्त्र राज्य बन जाने की प्रक्रिया आरंभ हो गयी।

फान्गूम द्वारा लाव-राज्य की स्थापना

लाव-साहित्य में राजकुमार फा न्गुम को लाओस राज्य का

संस्थापक माना गया है। लाओस के एक क्षत्रिय नेता ने देश के बाहर भागकर आंगकोर के राजदरबार में शरण ली थी, फा न्गूम उन्हीं का पुत्र था। बाल्यावस्था में राजकुमार का पालन-पोषण एक बौद्ध-भिक्षु की देखरेख में हुआ। सोलह वर्ष की आयु होने पर ख्मेर राजा ने अपनी पुत्री उसे ब्याह दी। १३४० से १३५० ईस्वी के बीच किसी समय फा न्गूम अपने श्वसुर की सहायता से एक सैनिक टुकड़ी का मालिक बना, जिसे साथ लेकर वह मेकांग की उत्तरी घाटियों में अपने पूर्वजों की भूमि पर पुनः अधिकार करने के लिए चल पड़ा। फा न्गूम जलमार्ग से ऊपर की ओर बढ़ रहा था। क्सियेङ खुआङ, हुआफन्ह तथा सिप सोङ फन्ना को पार करता हुआ फा न्गूम का दल लुआङ प्रबाङ जा पहुंचा, जहां उसने विधिवत् अपने राजा होने की घोषणा की। कुछ ही समय बाद फा न्गूम ने उत्तर की ओर मेनाम घाटी में स्थित क्सियेङ माइ का सूबा जीत लिया, और वापसी में वियेनत्यान पर भी अपना झण्डा फहरा दिया। इसके बाद खोराट पठार को जीतते हुए र्वा (RWA) तक पहुंचने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई।

प्रबाङ की स्थापना

लाव-राज्य के शुद्ध लाव-रक्त के शासक फा न्गूम के अधीनस्थ हो जाने का एक सुपरिणाम यह हुआ कि ख्मेर और थाइ स्रोतों से ब्राह्मण और बौद्ध संस्कृतियों का यहां प्रवेश हुआ। इससे पहले इन संस्कृतियों का प्रभाव वियेन-त्यान से आगे नहीं पहुंच सका था, परन्तु अब लाव-राजा के प्रयत्नों से ये संस्कृतियां मेकांग की ऊपरी घाटियों तक पहुंच गयीं। इस स्थिति का बहुत-सा श्रेय फा न्गूम की पत्नी ख्मेर-राजदुहिता को भी जाता है। राजकुमारी के कहने से फा न्गूम ने आंग-कोर से अपने धार्मिक गुरु को लाओस बुलवा लिया। साथ ही वहां से तथागत की प्रसिद्ध प्रतिमा प्रबाङ को भी लाकर विधिवत् स्थापित किया, जिसके कारण राजधानी का नाम लुआङ प्रबाङ पड़ा। लुआङ प्रबाङ राजमहल के राजमन्दिर में यह प्रतिमा आज भी प्रतिष्ठित है, आगे चलकर इस प्रतिमा के संबन्ध में हमें और भी कुछ कहने का अवसर मिलेगा।

लाव-राज्य की स्थिति और विस्तार

द्वितीय महायुद्ध के बाद १९५६ में जेनेवा-सन्धि के निर्णयानुसार नव-स्थापित लाओस राज्य में फ्रांस-आज़ी प्रकाशन गृह द्वारा 'किंगडम आफ़ लाओस' (लाव-राज्य) नाम से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में ए० आर० माथियेन ने लाओस के अन्तर्गत छोटे-छोटे प्रदेशों और उनके शासकों की एक लम्बी सूची दी है। इसमें वे सब नाम सम्मिलित हैं जिन्होंने फा न्गूम के बाद १३५३ से १९५५ वर्त्तमान समय तक, लाओस पर शासन किया। छः सौ वर्ष की इस लम्बी अवधि में झूले की पेंगों के समान लाव-देश की राजधानी निरंतर बदलती रही, जिसके विवरण में जाने की यहां आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मुख्य रूप से राजकार्य का संचालन लुआङ प्रबाङ में होता रहा। १५६३ में फा न्गूम के ही एक वंशज सेत्थर्थारथ (श्रेष्ठ तीर्थ) ने सैनिक एवं व्यापारिक कारणों से राजधानी को वियेन त्यान में स्थानान्तरित किया। सेत्थथीरथ के पिता फोथिसारथ (बोधिसार्थ) की मृत्यु १५५९ में हो गयी थी, उस समय बर्मा के राजा बुरेंग नाउंग ने ने यह सोचकर कि पड़ोसी 'लान क्साङ (लाओस) का राज्य इतना समृद्ध क्यों रहे!' ईर्ष्यावश इस छोटे-से राज्य पर आक्रमण कर दिया। सेत्थथीरथ ने युद्ध करना अस्वीकार कर दिया, परन्तु निकटवर्ती थाइ-नरेश से सन्धि का प्रस्ताव किया जिससे दोनों देशों के ऊपर बर्मा से आया हुआ संकट टाला जा सके। फिर भी लाओस के विरुद्ध बर्मा के आक्रमण १६वीं शती ईस्वी तक जारी रहे, यहां तक कि बर्मी शक्तियों ने लाओस को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। इस हार के साथ-साथ लाओस में भी आन्तरिक झगड़े शुरू हो गये, जिनके फलस्वरूप १६९८ में देश का विभाजन हुआ और लुआङ प्रबाङ तथा वियेन त्यान दो अलग-अलग क्षेत्रों की राजधानियां बनीं। राजा तो यथापूर्व लुआङ प्रबाङ में निवास करते थे, जबकि प्रशासनिक कार्यवाही वियेन त्यान से होती थी। यह एक दुविधा की स्थिति थी। इसके बाद थाइलैण्ड ने, जिसकी सीमा मेकाग नदी के उस पार लगी हुई थी वियेन त्यान पर १७७८ और १८२८ में दो बार आक्रमण किया और दोनों

बार इस सुन्दर नगर को जलाकर राख कर दिया। मधुर रस से भरे किसी परिपक्व फल के समान लाओस पर सदैव ही शत्रुओं की दृष्टि रही थी। लाओस के विरुद्ध थाइलैण्ड की साठगांठ १८८५ तक चलती रही। अन्ततोगत्वा उन्होंने अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिए कई विदेशी शक्तियों की, जिनमें अंगरेज प्रमुख थे, सहायता ली। इस समय तक वियेतनाम पर फ्रान्स का कब्जा हो चुका था और अन्नाम के प्रशासक चक्रवर्ती राजा ने फ्रान्स को थाइलैण्ड का मुकाबला करने का निमन्त्रण दिया, क्योंकि थाइलैण्ड अब लाओस से आगे बढ़कर उनके देश को हथियाने के मंसूबे बांध रहा था। इस प्रकार लाओस में फ्रान्सीसी सत्ता के चरण प्रवेश का सूत्रपात हुआ और उन्होंने १८८५ में ही लुआङ प्रबाङ में अपना प्रथम अवैध राजनयिक कार्यालय खोल दिया। लाओस पर फ्रान्स का प्रभुत्व १९४५ तक बना रहा। उस समय द्वितीय महायुद्ध चल रहा था और जापान पूर्वी एशिया के बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर चुका था। १९४५ में जापानी सेनाएं लाओस तक बढ़ आयीं, और उन्होंने फ्रेंचों को निकाल बाहर किया।

जेनेवा सन्धि और उसके बाद

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद हिन्दचीन के भौगोलिक और राजनीतिक मानचित्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। १८८५ के बाद से हिन्दचीन में प्रमुख विदेशी शक्तियों में फ्रांस का स्थान प्रथम था। समूचे वियेतनाम, लाओस और कम्बोदिया में फ्रांसीसी औपनिवेशिक शक्ति काम कर रही थी। परन्तु डियें बियें फू की लड़ाई में फ्रेंचों की करारी हार हुई और उन्हें इस क्षेत्र को छोड़कर जाना पड़ा। उनके जाने के बाद जेनेवा सन्धि के निर्णयों के अनुसार हिन्द-चीन के चार प्रमुख देशों में से कम्बोदिया, वियेतनाम और लाओस एक बार फिर अपनी स्वाभाविक भौगोलिक सीमा में उभरकर आये और अपनी स्वतन्त्र जीवन-पद्धति को अपनाने का अवसर पा सके, जबकि थाइलैण्ड सदा की भांति पश्चिमी ताकतों से सांप-छछूंदर का खेल खेलता हुआ अपनी निजी सत्ता का संरक्षण करता रहा। सांस्कृतिक दृष्टि से इन चारों देशों में बहुत समानता है क्योंकि सभी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं,

जबकि लाओस और थाइलैण्ड के लोग अपने जाति-मूल में भी एक हैं। थाइलैण्ड और लाओस की भाषा और संस्कृति में भी बहुत समानता है; दोनों एक ही भाषा बोलते हैं, यद्यपि दोनों की लिपियां अलग-अलग हैं। रीति-रिवाज, रहन-सहन, भोजन-वस्त्र, वेष-भूशा के अतिरिक्त लाओस और थाइलैण्ड भौगोलिक दृष्टि से भी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। वास्तव में लाओस, कम्बोदिया, थाइलैण्ड और मलयेसिया का एक बड़ा भाग भारतीय संस्कृति से गहन रूप से अनुप्राणित है और हिन्द-चीन के भीतर भारत (हिन्द) के नाम को सार्थक करता है। यह संस्कृति हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म के थेरवाद से मिल-जुलकर बनी है। फलतः इसमें बौद्ध धर्म के गहन दर्शन और अनुचिन्तन के साथ-साथ हिन्दू धर्म की सौन्दर्यात्मक कल्पनाशीलता और काव्यप्रेम के दर्शन भी होते हैं। इस सारे भूभाग की एक विशेषता यह है कि इसमें असंख्य स्थानों पर अनेक सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें मूर्ति तो भगवान बुद्ध की है, परन्तु दीवारों और भित्तियों पर हिन्दू देवी-देवताओं के चित्र उत्कीर्ण हैं, तथा इस सबको किसी विशाल मातृ-आवरण से घेरती हुई मन्दिरों की वे बाह्‌य दीवारें हैं जिनपर मीलों लम्बी पृष्ठभूमि पर रामायण की पूरी कथा सुन्दर रंगों में अत्यन्त कलात्मकतापूर्वक अंकित की गयी है। इन चित्रों की सौन्दर्यानुभूति देखते ही बनती है। इस पूरे क्षेत्र के प्रत्येक बौद्ध मन्दिर के प्रांगण में दीवारों पर रामकथा का पत्थर में या रंगों में चित्रित करना उसकी अपनी विशेषता है। सौन्दर्याभिव्यक्ति के अतिरिक्त इन चित्रों का अपना एक और महत्त्व है। आजकल की पश्चिमी सभ्यता और साम्यवाद से आक्रान्त तेजी से बदलते इस युग में जब यहां के भी मनुष्य राजनीतिक सत्ता-बदल के चक्करों में अपने सांस्कृतिक दाय को भूलते जा रहे हैं, तब इन क्षेत्रों की रामायण-कथा को जानने और उसका संग्रह करके और उसे विलोप से बचाने में इन चित्रों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

भारतीय संस्कृति का हिन्द-चीन में प्रवेश ईसा से कई शताब्दी पूर्व ही हो गया था। उल्लेखनीय बात यह है कि इस संस्कृति का प्रवेश उपनिवेशवाद या राजनीतिक साठ-गांठ या युद्ध के द्वारा नहीं हुआ था। भारतीय साहित्य, काव्य, इतिहास और दर्शन के द्वारा बड़ी आसानी से

और स्वाभाविकता से हमारी संस्कृति का प्रवेश इन देशों में हुआ और उसे स्थानीय निवासियों ने उसी आतुरता और आस्था से ग्रहण किया जैसे गर्मी से व्यथित व्यक्ति दक्षिण से आती शीतल मलयसमीर को ग्रहण करता है। ईसा के ५०० वर्ष बाद ही रामायण का प्रचार यहां इतना बढ़ गया था कि उसके आदि-प्रणेता वाल्मीकि को विष्णु का अवतार माना जाने लगा, और उनके सम्मान में मन्दिरों का निर्माण होने लगा। वाल्मीकि ईश्वरीय करुणा और प्रकृति की सृजनशीलता के पर्याय माने जाने लगे। चम्पा में (आधुनिक वियेतनाम) राजा प्रकाश-धर्म (६५३-६७८ ईस्वी) के काल का एक मन्दिर प्राप्त हुआ है जिसमें वाल्मीकि की पत्थर की मूर्ति बनी हुई है और संस्कृत में निम्न अभि-लेख है :

यस्य शोकात् समुत्पन्नं श्लोकं ब्रह्माभिपूजितम्।
विष्णोः पुंसः पुराणस्य मानुषस्यात्मरूपिणः ॥

(देखें कामिल बुल्के, रामकथा, पृ० २७३)

"जिसके शोक से वह पहला श्लोक समुत्पन्न हुआ था, और जिसकी प्रशंसा ब्रह्मा ने भी की थी; जो विष्णुस्वरूप प्राचीन पुरुष वाल्मीकि है, (उसीकी स्मृति में यह मन्दिर निर्मित हुआ)।"

हमारी लाओस-यात्रा

जेनेवा-सन्धि के १९५४ में हस्ताक्षरित होने के बाद लाओस को राष्ट्र-संघ का सदस्य बना लिया गया। शताब्दियों बाद इस छोटे-से देश को एक बार फिर पूर्ण प्रभुसत्ता और स्वतन्त्रता से युक्त होकर संसार के अन्य सभ्य देशों के बीच बैठने का मौका मिला था। इस नवीन स्थिति में १९ मई, १९५९ को हम थाइलैण्ड से नोंग खाइ होते हुए लाओस पहुंचे। नोंग खाइ पर हमने मेकांग नदी पार की। पतिदेव को यहां प्रथम बार भारतीय राजदूत के पद पर भेजा गया था और हमें इस अत्यन्त आकर्षक देश में अपने देश का प्रतिनिधित्व करना था। हमारे यहां पहुंचने के समय लाओस की राजगद्दी पर महाराजा सवङ वत्थन विराजमान थे, जो हाल ही में अपने पिता महाराजा सिस-वोङ वोङ के निधन के उपरान्त गद्दी पर आये थे। सवङ वत्थन के

पिता का राज्यकाल १९०३ से आरंभ हुआ था। इस ५० वर्ष के लम्बे अन्तराल में युवराज के रूप में सवाङ वत्थना अपने देश की स्वतन्त्रता के नाटकीय इतिहास के साक्षी रहे थे। और अब समय आया था कि वे उसके योग-क्षेम में अपना अंशदान करें।

लाओस में रामायण की खोज का आरंभ

भारत छोड़ने से पहले हम लाओस के विषय में सूचना प्राप्त करने के लिए आचार्यप्रवर डॉ० रघुवीर के पास गये थे। आचार्य प्रवर अपने आप में भारत और सम्पूर्ण एशिया का चलता-फिरता सांस्कृतिक-कोष थे। उन्होंने हमें लाओस की रामायण की खोज करने और उसे अपने साथ भारत ले आने की सलाह दी। उनका कहना था कि हम पाण्डु-लिपियों को खोजें और यदि उन्हें न ला सकें तो कम से कम उनके माइक्रोफ़िल्म (सूक्ष्मचित्र) ही प्राप्त कर लें। लाओस पहुंचकर हमें पता चला कि भारतीय संस्कृति के दोनों महान ग्रन्थों, रामायण और महा-भारत का संरक्षण यहां विशेष रूप से मन्दिरों और राजप्रासाद द्वारा किया गया है। हमने देखा कि जहां बौद्ध धर्म ने लोगों को उनके सामाजिक दायित्वों की ओर जागरूक रखा है, बौद्ध धर्म के प्रभाव से जहां अनगिनत मन्दिर-विहार, पाठशालाएं तथा बूढ़े लोगों के लिए आवास और अस्पताल बनाए गए हैं, वहां रामायण और महाभारत की प्रेरणा से लोगों की सौन्दर्य-दृष्टि पुष्ट और समृद्ध हुई है। पत्थर, लकड़ी, धातु, काव्य, संगीत, नृत्य स्थापत्य कला के अनेक माध्यमों और शिल्पों से यहां की सरल हृदय जनता ने अपने दैनंदिन आनन्द और उल्लास को रामायण के कथानकों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। और इन सबसे उनका जीवन अधिक समृद्ध, पूर्ण और प्रसन्न बन सका है।

लुआङ प्रबाङ की प्रथम यात्रा

लाओस के महाराजा के समक्ष भारत के राजदूत का परिचय-पत्र प्रस्तुत करने हमें लुआङ प्रबाङ जाना पड़ा। परिचय-पत्र की औप-चारिकताओं के समाप्त होते ही हमने रामायण की खोज शुरू कर दी.

और उसका प्रारंभ लुआङ प्रबाङ से ही किया। यह छोटा-सा राजनगर मेकांग नदी के उत्तरी तट पर छोटे-छोटे पर्वतों की हरी-भरी उपत्यकाओं के बीच स्थित है। जलमार्ग के अतिरिक्त यहां आवागमन का एकमात्र साधन विमान था, उसमें भी विमान-चालक को पर्वतों के बीच हाथ की हथेली समान छोटी-सी समतल भूमि पर विमान को उतारने में बड़ी हिम्मत और होशियारी से काम लेना पड़ता था। वाराणसी या मथुरा के समान लुआङ प्रबाङ भी मन्दिरों का नगर है। भेद केवल इतना है कि यहां का प्रत्येक मन्दिर अपने-आप में कला का एक उत्कृष्ट नमूना है; मन्दिर के भीतर और बाहर की भूमि पूर्णतया स्वच्छ रखी जाती है। इस छोटे-से नगर में हमने ४१ मन्दिरों की गणना करके उनके दर्शन किये। मन्दिरों को यहां स्थानीय भाषा में 'वाट' कहते हैं। ये सब मन्दिर १४वीं से लेकर १६वीं शताब्दी ईस्वी के बीच बने हुए थे। मन्दिरों की छतें तीन पटलों में पंख खोले उड़ते हुए पक्षी के आकार में बनी थीं मानो दर्शकों के भक्ति-उद्वेलित हृदयों को लेकर ये अभी आकाश में उड़ जायेंगी। उनके लकड़ी के आधार-स्तम्भ अद्भुत सुनहरी चित्रकारी से उत्खचित थे। मन्दिरों के प्रांगण आम, फ्रांजिपाणि (चम्पा), नारियल और कटहल के पेड़ों से भरे थे। समस्त दृश्य स्वप्न में चलते किसी अलौकिक चलचित्र का आभास देता था।

परिचय-पत्र प्रस्तुत करने के बाद हम हिन्दूधर्मानुयायी प्रथम भारतीय थे जिन्होंने राजमन्दिर में जाकर पूजा सम्पन्न करने की इच्छा प्रकट की थी। इसके लिए महाराजा हमें अपने निजी कक्ष में ले गये और पहले-पहल अपना पुस्तक-संग्रह हमें दिखाया। संस्कृत साहित्य, भारतीय दर्शन और इतिहास की अनेक पुस्तकें उनके पास सुरक्षित थीं। और फिर इसी समय उन्होंनें हमें लाओस की प्रसिद्ध स्वर्ण-प्रतिमा 'प्रबाङ' का रोचक इतिहास बताया। हम महाराज के साथ उनके मन्दिर में इस बुद्ध-प्रतिमा के सम्मुख खड़े थे और वे बोल रहे थे, "पिछली बार जब हमारे देश पर थाइ आक्रमण हुआ तो प्रबाङ को सुरक्षित रखने के लिए स्थान ढूंढ़ने में हमें बड़ी कठिनाई हुई क्योंकि थाइ कई बार प्रबाङ के अपहरण का प्रयास कर चुके थे। अन्त में हमने प्रबाङ को मेकांग नदी की धारा के नीचे रेत में छिपा दिया उसी प्रकार

जैसे बालक अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु को मां की गोदी में छिपा देता है। और सचमुच मां गंगा ने हमारे विश्वास की रक्षा की, क्योंकि ज्यों ही थाइ पीछे हटे, हम प्रबाङ को अक्षत दशा में नदी के नीचे से निकाल लाए।'' यह कहते हुए महाराजा ने प्रतिमा को अपने हाथों में ले लिया और प्रेमपूर्वक उसपर हाथ फेरते हुए हमें वे निशान दिखाने लगे जो उसकी स्वर्णमय देह पर लहरों के आवागमन से बन गये थे। प्रबाङ लाव-राज्य की संरक्षक प्रतिमा है। लाओस की रक्षा के लिए वह १२ वर्ष तक पानी के नीचे पड़ी रही थी। लहरों के ये निशान मानो उसके योद्धा शरीर पर लड़ाई के चिह्न थे। लाव-लोगों का विश्वास है कि प्रबाङ की प्रतिमा सिंहल द्वीप में निर्मित हुई, वहां से कम्बोदिया में ख्मेरों के पास पहुंची जहां उसके श्वसुर ने उसे फा न्गूम को भेंट कर दिया। प्रबाङ लाव-राज्य की समृद्धि और स्थापना का चिह्न था, और उनके असीम प्रेम और आदर का भी। महाराजा ने हमें अपने इस रहस्यमय अन्तर्निहित आदरभाव को जानने के योग्य समझा और इस प्रकार हमें अपना चिरकृतज्ञ बना लिया।

वाट माइ और वाट पऽ केऽ में रामायण-चित्र

महाराजा के विशेष आदेश से एक प्रौढ़ और जानकार व्यक्ति हमारे साथ मन्दिरों के दर्शन के लिए भेजा गया। परन्तु यहां हमें एक तथ्य स्वीकार करना पड़ेगा। लाव-जनता अपनी संस्कृति और उसके उपादानों में इतनी एकाकार हो गयी है कि उसमें अपने को उससे अलग कर अथवा उसे अपने से अलग कर देखने की क्षमता नहीं रही है। यहां तक कि उन्हें अपने और अपनी संस्कृति के संबन्ध में कोई प्रश्न पूछने की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। परन्तु हम यहां रामायण की खोज के एक विशेष उद्देश्य को लेकर आये थे, और हमारे लिए प्रश्न करना अनिवार्य था। हमें अपने मार्गदर्शक से बार-बार पूछने और बहुत प्रयत्न करने पर ही रामायण के बारे में कोई जानकारी प्राप्त हो सकी। यहां यह स्मर्तव्य है कि निकट अतीत में जब आनकोर के मन्दिर प्रकाश में आये तो स्थानीय लोगों ने भी कोई आश्चर्य प्रकट नहीं किया था। पूछने पर उन्होंने कहा था—'ये

स्थापत्य तो यहां थे ही ! वे सदा से थे जैसे हवा, पानी, धूप सदा रहते हैं !''

काफी खोजबीन के पश्चात् हमें दो मन्दिरों का पता चला जहां रामायण-कथा के कुछ भाग चित्रों के रूप में सुरक्षित थे। ये थे वाट माइ और वाट पऽ केऽ।

वाट माइ राजमहल के ठीक सामने स्थित है। १७९६ में इसे महाराजा फ्रा चाओ अनुरुट (प्रिय राजा अनिरुद्ध) ने बनवाया था। इसकी छत एक सुन्दर काष्ठस्तम्भ पर आधारित है। धरनियों की काष्ठपट्टिकाओं पर रामायण के कतिपय संदर्भ उकेरे गये हैं। इनमें प्रमुख हैं रावण की उत्पत्ति, हनुमान की माता नांग सवाहा (देवी स्वाहा) की कथा। कैसे सवाहा ने अपनी माता नांग अत्चना (देवी अंजना) और उसके गुप्त प्रेमियों को छिपकर देख लिया और उसके उसे कैसे विषम परिणाम भोगने पड़े। १९१७ में फ्रांसीसी विद्वान लुई फीनो ने अपने एक लेख में वाट माइ के बारे में लिखा है, ''यह मन्दिर राजमहल के दक्षिण में स्थित है। इसका निर्माण एक पुराने मन्दिर वाट सी फूम की नींव पर किया गया था। क्योंकि वाट माइ के अर्थ हैं नया मन्दिर अथवा 'नया पगोडा'। राजा अनिरुद्ध ने इसे १७९६ में बनवाया। इसमें प्रबान की प्रतिमा स्थापित है जो पहले वाट विसुन (विष्णु) में प्रतिष्ठित थी। वाट माइ में लुआङ प्रबाङ का सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालय था। यही पुस्तकें फ्रांस की सुदूर पूर्व की अध्ययनशाला (एकोल फ्रान्सेज़ दे एक्स्त्रीम ओरियां) का प्रथम आधार बनीं। १९०० ईसवी में एक भिक्षु ने इन पुस्तकों को अध्ययनशाला को दान में दे दिया था। १९१३ के एक अग्निकाण्ड में ये सब पुस्तकें जलकर समाप्त हो गयीं।'' (फ्रांस की सुदूरपूर्व की अध्ययनशाला की बुलेटिन संख्या १७-१९१७)

कुतूहलवश हम लोग वाट विसुन भी देखने गये। भारतीय दृष्टि से यह वाट बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके प्रमुख द्वार के कपाटों पर चतुर्भुज नारायण की मूर्ति उकेरी गयी है। नारायण गरुड़ पर आरूढ़ हैं और अपने हाथों में क्रमशः धनुष, चक्र, गदा और मणि धारण किये हुए हैं। अन्य द्वारों पर ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्र और कमल पर विराज-

मान ब्रह्मा की मूर्तियां हैं। ब्रह्मा के चारों मुखों में से केवल एक ही दिखाई देता है। उनके अधोवस्त्र पर पड़ी सलवटें बड़ी सुन्दरता से उकेरी गयी हैं और हथेलियों का अंकन अत्यन्त बारीकी से किया गया है। चौथे द्वार पर शिवजी अपने वृषभ नन्दी की सवारी करते दिखाये गये हैं। यहां उनकी रुद्र-मुद्रा है, उनके गले के हार का अलंकरण अग्नि-शिखाओं से किया गया है और उनके वस्त्रों की सजावट दर्शनीय है। वृषभ नन्दी के दो सींग हैं, परन्तु उनका मुख घोड़े जैसा दिखाया गया है। इसका कारण यह है कि गाय और बैल लाओस के प्राकृतिक पशु नहीं हैं। भारतीय संस्कृति के प्रवेश के बाद ही इन्हें भारत से लाया गया। अतएव शुरू-शुरू के लाव-चित्रकार गाय या बैल अंकित करने में अस-फल रहे। इस प्रकार वाट विसुन में तीनों महाशक्तियों—ब्रह्मा, विष्णु (अपने नारायण रूप में) और शिव देवताओं के राजा इन्द्र सहित विराजमान हैं। वाट विसुन की भीतरी दीवारों पर राम और रावण के बीच युद्ध के दृश्य चित्रित किये गये हैं; हनुमान तथा अन्य पात्र भी उपस्थित हैं। इन चित्रों को महाराजा फेटसारथ के पिता की आज्ञा से बनवाया गया था। चित्रों के आगे लोहे की पट्टिका पर दीप-दान बने हुए थे, जिनपर पड़े निशानों से ज्ञात होता है किसी समय में इन चित्रों के सम्मुख विधिवत् पूजा अर्पित की जाती थी। इस लोह-पट्टिका को अब उखाड़ दिया गया है।

लाओस पर अधिकार करने के कुछ समय बाद फ्रेंच विद्वानों ने यहां अपनी खोज आरंभ की। १९५८ में लाओस की कला पर हेनरी पारमेन्तियेर का अधिकृत ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। पारमेन्तियेर ने लाव-मन्दिरों का सर्वेक्षण १९२२ में आरंभ किया था और २२ फरवरी, १९४९ को अपनी मृत्यु के दिन तक वह इस काम में लगा रहा था। उसके जीवन-भर के अर्जित श्रम को उसकी मृत्यु के बाद उसकी निष्ठा-वान् पत्नी द्वारा प्रकाशित किया गया। पारमेन्तियेर ने अपने ग्रन्थ में वाट माइ का विस्तृत वर्णन दिया है। इस मन्दिर के द्वारों पर उत्कीर्ण योरोपीय, डच और वेनीशियन जाति के लोगों के चित्रों के विषय में उन्होंने लिखा है, "इन चित्रों से यह परिलक्षित होता है कि लाओ और लावों को अपने देश पर विदेशियों का प्रभुत्व रास नहीं आया

था। अक्सर वे इन विदेशी लोगों को अपने मन्दिरों के शिल्प में अपमानजनक मुद्राओं में दिखाते थे।" बैंगकाक (थाइलैण्ड की राजधानी) के वाट पो में हमने भी इसी प्रकार के विदेशियों के चित्र देखे थे। राजनैतिक दासता के माहौल में भी आत्मा अपनी स्वतन्त्रता का परिचय यहां कलात्मक कृतियों के माध्यम से दे रही थी। किन्तु आश्चर्य यह है कि लाओस के मन्दिरों के गहन अध्ययन के बाद भी पारमेन्तियेर मन्दिर के भीतर के काष्ठ पर उकेरे गये चित्रों के विषय के बारे में कोई जानकारी नहीं दे सके, जबकि एक साधारण भारतविद् भी देखकर यह बता सकता है कि वाट माइ की छत को केन्द्रीय धरनी पर रावण और हनुमान दोनों के जन्म की कथा उकेरी गयी है। इन चित्रों का विवरण हम आगे 'लुआङ प्रबाङ की रामकथा' शीर्षक के अन्तर्गत देंगे। क्योंकि रामायण के इन्हीं प्रसंगों को दूसरे मन्दिर वाट पऽ केऽ के चित्रों में भी दोहराया गया है। यहां पर हमें केवल यही कहना है कि लुई फ़ीनो और पारमेन्तियेर दोनों फ्रेंच विद्वान अपने ग्रंथों में रामायण का कतई जिक्र नहीं करते। कभी-कभी तो ऐसा सन्देह होता है कि इन लोगों को इस बात का पता ही नहीं था कि वाट माइ के चित्रों का सम्बन्ध भारत की प्रसिद्ध रामायण-कथा से भी हो सकता है।

वाट माइ के द्वारों पर हिन्दू देवी-देवताओं और यक्षों के अनेक चित्र हैं। पारमेन्तियेर इन्हें पहचानने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं, अतः उन्होंने केवल इतना लिखकर सन्तोष कर लिया है कि "ये मुकुट पहने हुए प्रभायुक्त व्यक्तियों के चित्र हैं जो बहुमूल्य सारोंग (कम्बोदिया, थाइलैण्ड और लाओस में पुरुषों द्वारा पहना जाने वाला अधोवस्त्र। यह बहुत कुछ भारतीय धोती के समान होता है) और अनेक रत्नखचित अलंकारों से विभूषित हैं।" वे आगे लिखते हैं, "इनकी टांगों का चित्रण अत्यन्त कुरूपता से किया गया है, और उन्हें अनेक प्रकार के पशुओं पर टिका हुआ दिखाया गया है, जैसे गजसिंह, पांवों और नखों से युक्त सर्प, ज़ीबू, शेर आदि।" (ज़ीबू ककुद्‌मान बैल को कहते थे जो केवल भारत में पाया जाता है। योरोपीय भाषाओं में 'ज़ीबू' 'शिवाज़ बुल'—शिव का बैल—शब्द के प्रथम अक्षरों के मेल से बना है।) आश्चर्य का विषय है कि पारमेन्तियेर जैसा विद्वान चित्रों में इन पशुओं की पह-

चान करने का कोई प्रयत्न नहीं करता और न ही इनपर आरूढ़ व्यक्तियों के बारे में कोई जिज्ञासा प्रकट करता है। क्योंकि इन चित्रों की पहचान निर्विवाद है, ये विष्णु और शिव के चित्र हैं जिनमें विष्णु शेषनाग पर और शिव नन्दी पर आरूढ़ अपने-अपने सहायकों सहित दिखाये गये हैं। लाओस और कम्बोदिया दोनों देशों में शिव की पूजा होती थी, क्योंकि मेकांग नदी के तट पर बसे एक नगर का नाम शंभु-पुर (वर्तमान साम्बोग) है। वास्तव में मेकांग घाटी के मध्यवर्ती प्रदेशों में शिव और उनके परिवार गणेश, पार्वती, कार्तिकेय और विष्णु की पूजा प्रचलित थी।

वाट पऽ केऽ की खोज

परन्तु हमारी रामायण-कथा की खोज का असली खजाना तो लुआङ प्रबाङ के वाट पऽ केऽ अथवा पऽ खेऽ के भित्तिचित्रों में छिपा पड़ा था! वाट पऽ केऽ के विषय में लुई फीनो ने लिखा है, "यह प्र वाट से निचले तले पर स्थित है। प्रथम निर्माण की तिथि अज्ञात। १८५१ में चाओ चन्तरात (राजकुमार चन्द्रराट्) द्वारा इसका पुनर्निर्माण।"
हमारे मार्गदर्शक ने बताया कि राजकीय निर्देश से अब वाट पऽ केऽ
वाट फ़ान अथवा फ़ाङ अधीन कर दिया गया था। लुइ फ़ीनो के अनु-
सार 'फ़ान' काम्पीची की लकड़ी को कहते थे, इस लकड़ी के बड़े-बड़े
लट्ठे होते थे। सेन मोक्षा ने इस वाट को १७०० ईस्वी में बनवाया
था। पारमेन्तियेर ने भी इस मन्दिर का विस्तार से वर्णन किया है।
उन्होंने लिखा है कि मन्दिर के कपाटों पर स्त्रियों की आकृतियां खुदी
हुई हैं, उनके पांव शेरों की पीठ पर टहरे हुए हैं और ये एक प्रकार की
अप्सराएं हैं। वास्तव में ये आकृतियां देवी पार्वती या दुर्गा की हैं जो
अपने सिंह पर आरूढ़ हैं। पारमेन्तियेर इन्हें पहचानने में असफल रहे
हैं। वाट प. फ़ान में चार अलग-अलग थाट (स्थापत्य) अथवा स्तूप
हैं, जिनमें तथागत की अस्थियां सुरक्षित हैं। इसलिए इस मन्दिर का
महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। इसमें अलग से एक पुस्तकालय-भवन भी है,
जिसके आगे एक आकर्षक अलिन्द, दोहरे पटल की छत और मन-
भावना गवाक्ष बना हुआ है। वाट पऽ केऽ का बहिरंग वर्णन यहां

समाप्त होता है।

वाट पऽ केऽ में रामायण-चित्र

लुआङ प्रबाङ के मन्दिरों में हमारी सबसे अधिक दिलचस्पी वाट पऽ केऽ में थी। पारमेन्तियेर ने इसके अन्तरंग का वर्णन इस प्रकार किया है, "इस वाट की शैली बड़ी सरल और स्वाभाविक है जिसमें एक दर्शनीय कक्ष और अलिन्द बनाया गया है। भीतर चमकते हुए फर्श पर काले लैकर (लाख) का पालिश किया गया है, जिसपर एक बहुत ऊंची वेदी बनी है। छत का विस्तार धरनियों और शहतीरों तक फैला हुआ है जिन्हें लाल और सुनहरे लाख के रंगों से रंग दिया गया है। वेदी के ऊपर कई अलंकृत गवाक्ष हैं।" आगे चलकर पारमेन्तियेर लिखते हैं, "दीवारों पर कुछ बेतुकी हास्यास्पद तस्वीरें बनी हुई हैं—(पाठक कृपया ध्यान दें क्योंकि यही अत्यन्त मूल्यवान् रामायण-कलाकृतियां है!) फिर पांच दरवाजे हैं, जिनमें से दो उत्तर की ओर हैं।" (देखें पारमेन्तियेर, आर्ट आफ़ लाओस, पृष्ठ ५७, ५८)। रामायण-चित्रों पर अपनी इस अज्ञतापूर्ण टिप्पणी के बाद पारमेन्तियेर मन्दिर के बहिरंग का विस्तार से वर्णन करते हैं, द्वार, अलिन्द, छत, स्तम्भ, एक द्वार पर विचित्र डच आदमी के वस्त्राभरण कुछ भी तो उनकी आंखों से ओझल नहीं होता। मन्दिर के मुख्य कक्ष में एक ऊंचे आसन पर भगवान् बुद्ध की प्रतिमा भूमिस्पर्श मुद्रा में दिखाई गयी है, इसके बाद पारमेन्तियेर दीवारों तथा मन्दिर के अन्य उपकरणों का वर्णन करने में लग जाते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पारमेन्तियेर ने बुद्ध प्रतिमा का भी सूक्ष्म विवरण देने का प्रयत्न नहीं किया, न ही उन्होंने स्तम्भों और द्वारफलकों पर उकेरे गये काष्ठ-शिल्पों को ही समझने की कोशिश की है। क्योंकि इनमें अनेक आकृतियों को जो शंख बजाते, शेर या हिरन की सवारी करते अथवा हाथ में त्रिशूल थामे सिंह पर बैठे हुए अथवा कतिपय अन्य महिष या गजसिंह जैसे वाहनों पर आरूढ़ दिखायी गयी हैं, इनको उन्होंने पूर्णतया आंख-ओझल कर दिया है जबकि उनकी दृष्टि ऐसी छोटी-छोटी चीजों पर भी ठहरती है जैसे चित्र में महिष

के पांवों के नीचे बहता पानी और उस पर बैठी एक चिड़िया। इन चित्रों में बहुत-सी वस्तुएं ऐसी हैं जिनका भगवान् शिव और उनके परिवार से सीधा सम्बन्ध है; एक विश्वविख्यात कला-विशेषज्ञ द्वारा कम से कम इन्हें तो पहचान लिया जाना चाहिए था! क्योंकि जब पारमेन्तियेर लिख रहे थे तब तक अनेक भारतीयों के बृहत्तर भारत अथवा दक्षिणपूर्व एशियाई देशों में भारतीय संस्कृति के विस्तार-सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके थे। इसके विपरीत पारमेन्तियेर ने डच और वेनीशियन वेश-भूषा पहने दो योरोपीय आकृतियों के सम्बन्ध में लम्बे-लम्बे अनुच्छेद लिख डाले हैं। इन योरोपीय आकृतियों के इर्द-गिर्द कुत्ते, खरगोश और चिड़ियों को दिखाया गया है और इन्हें केवल मन्दिर के सबसे बाहरी कपाटों पर ही अंकित किया गया है। इन विदेशी चित्रों के सम्बन्ध में फ्रांसीसी विद्वान ने एक विलक्षण तर्क प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि लाव-चित्रकार ने अपनी कला में संभवतया चीनी ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त की है जिनमें अक्सर विदेशियों को चित्रित किया जाता था। चीनी ग्रन्थों का अनुमान मन्दिर के जंगलों के ऊपर लगी पट्टियों में प्रयुक्त चीनी मिट्टी की गुटिकाओं से किया गया है क्योंकि उनका रूपाकंन चीनी ढंग का है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार के निकट दो चीनी फ़ो जाति के कुत्तों की पाषाण-प्रतिमाएं हैं, अपने पंजों में ये लकड़ी के 'सावोट' पहने हुए हैं जिनका शिल्प भी चीनी है। यह एक अद्भुत तर्क है जो अपनी श्रेष्ठता के अहं से ग्रसित उपनिवेशवादी जाति के सदस्य के गले के ही नीचे उतर सकता है। क्योंकि मन्दिर में तथाकथित 'चीनी ग्रन्थों' के अस्तित्व का पता नहीं चला है। कुत्तों को चीनी ढंग के जूते पहनाकर भी लाव-कलाकार ने चीन के प्रति अपना आक्रोश और निरादरभाव प्रकट किया है।

हमारे विचार में लाओस, कम्बोदिया और थाइलैण्ड इन तीनों देशों में मन्दिरों की बाह्य भित्तियों पर खुदी योरोपीय आकृतियों को यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि ये महज चीनी कला का प्रभाव या उसका अनुकरण-मात्र है। हिन्द-चीन के मन्दिरों के बाहर सामान्य द्वारपाल की हैसियत से इन योरोपियन आकृतियों को खड़ा करने का रहस्य प्रभुतासम्पन्न उपनिवेशवादी संस्कृतियों के विद्वान् तब

तक नहीं समझ पाएंगे जब तक वे प्रभुता की ऊंचाइयों से उतरकर सहृदय मानवीयता का दृष्टिकोण नहीं स्वीकारते।

मन्दिरों की भित्तियों पर डचों की आकृतियां और दक्षिण-पूर्व एशिया में योरोपीय उपनिवेशवाद

इस विषय को समझने के लिए, हम पहले दक्षिण-पूर्व एशिया में योरोपीय औपनिवेशिक-विस्तार के इतिहास पर क्षण-भर दृष्टिपात कर लें।

१६४१ में डच ईस्ट इण्डीज़ के गवर्नर, जनरल आन्त्वान वान डीमान ने गेरिट वोन वेस्टहोफ़ नामक एक डच नागरिक को लाओस के महाराज के पास उपहारस्वरूप कुछ सस्ती वस्तुएं और एक पत्र देकर भेजा था। डीमान दूरदर्शी व्यक्ति था; इस चाल से उसका इरादा लाओस से व्यापार बढ़ाना और धीरे-धीरे उसे अपने प्रभाव-क्षेत्र में ले आने का था। वेस्टहोफ़ ने अपनी यात्रा का वृत्तान्त डायरी के रूप में छोड़ा है। उसके एक अवर कर्मचारी ने लिखा है कि लाओस में वेस्टहोफ़ की उपस्थिति के समय दो पुर्तगाली पादरियों ने वियेनत्यान की यात्रा की। वे लाव-राजा के लिये दो सफेद छोटे कुत्ते "एक खरगोश और ऐसी ही कुछ और चीज़ें लाये थे।" इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि लाव-कलाकारों को वाट पऽ केऽ के द्वारपटलों पर दो योरोपीय आकृतियों के साथ दो कुत्ते, खरगोश और चिड़िया को चित्रित करने की प्रेरणा कहां से प्राप्त हुई। वाट पऽ केऽ लुआङ प्रबाङ के महत्त्वपूर्ण मन्दिरों में से है। अतएव राजप्रासाद के विदेशी यात्रियों का मन्दिर के बाहर चित्रांकन अस्वाभाविक नहीं था। विशेष रूप से १६-वीं शती की पृष्ठभूमि में जब पुर्तगाली और इस्पहानी डाकुओं की देखा-देखी डचों में भी सुदूरपूर्व देशों के सुगन्धित द्रव्यों के बाज़ारों पर कब्ज़ा करने का उत्साह जागा था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ तक ईस्ट-इण्डीज़ के निकटवर्त्ती सभी द्वीपों में डचों की बस्तियां बन गयी थीं, और इन लोगों ने बटेविया (वर्त्तमान जकार्त्ता, इन्दोनीसिया की राज-धानी) में अपना मुख्य कार्यालय स्थापित कर लिया था जहां से ये लोग हिन्द-चीन में विभिन्न स्थानों पर नये बाज़ारों की खोज में अपने दूत भेजा करते थे। लाओस, थाइलैण्ड और कम्बोदिया में हम जहां भी

मन्दिरों अथवा कलाकृतियों को देखने जाते थे, हमारे मार्गदर्शक हमें अनिवार्य रूप से ऐसे चित्रों को दिखाते थे जहां डच और पुर्तगाली आकृतियों को चित्रित किया गया है। हमने देखा कि इस प्रकार का योरोपीय व्यक्तियों का चित्रण मन्दिरों के वाह्य द्वारों, दीवारों अथवा इसी प्रकार की मामूली जगहों पर द्वारपाल या सेवक के रूप में किया जाता था। भारतीय अतिथियों को यह समझने में देर नहीं लगती थी कि स्थानीय निवासी इस प्रकार कला के माध्यम से विदेशी आक्रान्ताओं के प्रति अपना आक्रोश प्रकट कर रहे थे। और यह भी स्पष्ट था कि इन आकृतियों का चित्रण उनकी भूमि पर उपस्थित जीवित व्यक्तियों को प्रत्यक्ष देखकर किया गया था और इसके लिए उन्हें चीनी नमूनों और पुस्तकों की नकल करने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी, जैसा कि पारमेन्तियेर महोदय ने कहने की अनर्गल चेष्टा की है।

पश्चिमी अन्वेषकों की रामायण-चित्रों को पहचानने में असमर्थता

रामायण-चित्रों के अध्ययन में एक मुख्य बात जो अब सामने आती है वह यह है कि दोनों फ्रान्सीसी अन्वेषक लुई फ़ीनो और पारमेन्तियेर, जो अपने-अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ माने जाते हैं और जो १९४९ के आधुनिक काल तक खोज करते रहे हैं, इन चित्रों को रामायण के प्रसिद्ध कथानक तथा हिन्दू पुराणों के पात्रों के रूप में क्यों नहीं पहचान सके ? चित्रों में वर्णित पात्रों को पहचानने की असमर्थता विशेष रूप से पारमेन्तियेर के ग्रन्थ की एक बहुत बड़ी कमी के रूप में नज़र आती है क्योंकि अन्य दृष्टियों से उनका ग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत, अपने विषय में व्यापक और सम्पूर्ण है। हमारे विचार में इस कमी के तीन कारण हो सकते हैं :

१. वास्तविक अज्ञान। यथार्थ में उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान नहीं था।
२. यह संभावना कि स्थानीय पुरोहित, मार्गदर्शक और भिक्षु उन्हें इन चित्रों के बारे में सही जानकारी नहीं देना चाहते थे क्योंकि ये चित्र उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा का अविच्छिन्न अंग थे, और वे इस गोपनीय सम्पत्ति में विदेशी

शोषकों को शामिल नहीं करना चाहते थे।

३. तीसरा कारण, जिसकी संभावना नहीं के बराबर है, यह हो सकता है कि रामायण-चित्रावली की सही जानकारी और पहचान होते हुए भी योरोपीय अध्येता भारत की सार्वभौम संस्कृति को वह श्रेय नहीं देना चाहते थे जो उसे अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक एशिया और दक्षिण योरोप और अफ्रीका के देशों के जीवन को प्रभावित करने के कारण प्राप्त था। इसीको अधिक स्पष्ट शब्दों में यदि कहना चाहें, तो कहना पड़ेगा कि उपनिवेशकाल की उठान के दिनों में जातीय श्रेष्ठता और अहं के मद का अनुकरण करते हुए जानबूझकर हिन्द-चीन की कला के प्रेरणा-स्रोत भारत को आंख से ओझल किया गया। इस संदर्भ में हम प्रसिद्ध समालोचक जार्ज सीडीज़ का उल्लेख करना चाहेंगे जिन्होंने १९५६ में लिखते हुए कहा था, "दुर्भाग्यवश अधिकांश योरोपियन अभी तक हिन्द-चीन के इतिहास से अनभिज्ञ हैं। उनके ज्ञान की सीमा सेंट हिल्येर के उस फ़तवे तक जाकर समाप्त हो जाती है जब १८६१ में उन्होंने लिखा था कि गंगा के उस पार भारत में एक इतिहासज्ञ के दृष्टिपात करने लायक कुछ नहीं है।"

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी योरोपीय विस्तारवाद और साम्राज्यविजय का काल था। इस काल के योरोपीय अध्येता किसी भी विजित एशियाई राष्ट्र को आदर का स्थान नहीं देना चाहते थे; विशेष रूप से उनकी शनि-दृष्टि भारत पर थी जो समस्त एशिया की सांस्कृतिक जननी और धात्री थी। ऐसा करने से उनकी समझ में योरोपीय सभ्यता और प्रतिष्ठा की हेठी होती थी और उसका विकास परवर्ती काल का सिद्ध होता था। यहां यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि स्वयं को श्रेष्ठ और सभ्यता की दौड़ में प्रथम कहने के अभिमान में योरोपीय अध्येताओं ने सत्य और यथार्थ का जी भर कर गला घोंटा। जो देश आज भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता के साक्षी रहे हैं उनमें जार्ज सीडीज़ ने प्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान लाओस को दिया

है। उन्होंने लिखा है, "लाओस की ही भूमि से भारतीय संस्कृति का विस्तार चीन और वियेतनाम में हुआ।" लाओस ने भारतीय संस्कृति को सिर-आंखों पर ग्रहण किया और फिर उसमें अपने स्वभावजन्य गुणों का मिश्रण कर उसे एक सम्पूर्ण लाव-संस्कृति का स्वरूप प्रदान किया। सीडीज़ ने यहां तक कहा है, "एक बार भारतीय संस्कृति का दाय स्वीकार कर लेने के बाद—लाओस ने मुस्तैदी से चीनी प्रभाव से उसकी रक्षा की।" और तब से लाओस ने लगातार भारतीय संस्कृति के संरक्षण को अपना मुख्य लक्ष्य माना है; अप्रतिहत साहस और वीरता से वह चीनी दबाव और आक्रमणों का सामना करता रहा है। और इसमें सन्देह नहीं कि लाओस अपने इस संकल्प, और तदनुरूप अपने महान् सांस्कृतिक इतिहास के कारण आज संसार के सभ्य राष्ट्रों में अपना एक विशेष स्थान रखता है। हमें इस बात का हार्दिक सन्तोष है कि काफी समय पूर्व से ही भारत इस तथ्य के प्रति जागरूक रहा है और उसने लाव-जनता को समुचित आदर और सहोदर भाई जैसा स्नेह प्रदान किया है।

लाओस में रामकथा का विस्तार

लाओस में रामकथा अपने चार रूपों में पायी जाती है—(१) नृत्य,(२) गीत,(३) चित्रांकन तथा स्थापत्य. और(४) काव्य (ताड़पत्रों पर लिखित ग्रन्थों के रूप में) और इसी क्रम के अनुसार उसकी जन-साधारण में लोकप्रियता भी है। संस्कृत-साहित्य में साहित्य की सब विधाओं में 'नाट्य' अथवा 'नाटक' को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि वह दृश्य और श्रव्य दोनों प्रकारों से दर्शक के हृदय में प्रवेश कर उसे प्रभावित करता है। लाओस में भी रामायण-कथा का नृत्य और गीति-मय रूप सर्वाधिक लोकप्रिय है। लुआङ प्रबाङ के राजकीय प्रासाद में रामायण-नृत्य नाटिका का विशेष रूप से अभ्यास किया जाता है। हमारे समय में जब महाराजा सवङ वत्थन की पुत्री राजकुमारी डाला (तारा) का विवाह हुआ तो लुआङ प्रबाङ में रामायण-नृत्य नाटिका अपने पूरे भव्य प्रारूप में प्रस्तुत की गयी। वियेनत्यान की 'नाट्यशाला' में विद्यार्थियों को इसका विधिवत प्रशिक्षण दिया जाता है। इस 'नृत्य नाटिका' को संगति के लिए अनुरूप वाद्य-संगीत और गीतों की भी परिकल्पना की गयी है। चित्रों ओर मूर्तिशिल्पों के रूप में रामायण कथा की उपस्थापना मन्दिरों में देखी जा सकती है, जिसका विविधवर्णी भव्य रूप हम लुआङ प्रबाङ में देख चुके हैं। वियेनत्यान के वाट ऊप मुओङ की चारों ओर की दीवारों पर रामायण को जलरंगों से चित्रित किया गया है। धार्मिक ग्रन्थ के रूप में रामायण का पाठ लाओस के अनेकानेक मन्दिरों में वर्षाकाल में किया जाता है। लोग दूर-दूर से धार्मिक कृत्य के रूप में इस पाठ को सुनने आते हैं। वियेनत्यान के प्रमुख बौद्ध मन्दिर में हम भी यह कथा सुन चुके हैं।

जहां तक रामायण, संवन्धी पाण्डुलिपियों का प्रश्न है उन्हें प्राप्त करना तो दूर, उनके दर्शन करना भी हमारे समय में (१९५९-६१) बहुत कठिन था। लाओस के शिक्षामन्त्री महामहिम चाओ न्हूई अमय

ने १९६० में एक वार्त्तालाप में हमसे कहा था कि "रामायण लाव-आध्यात्मिक कल्पना और बौद्धिक जीवन का एक अंग है, और अभी तक किसी भी पाण्डुलिपि के आधार पर उसका प्रकाशन पुस्तक रूप में नहीं हुआ है।" १९६१ में लाव-अध्येता थाओ केन ने हमें सूचित किया कि लाओस के राजवंश के एक सदस्य चाओ फेट सारथ ने 'फा लाक फा लाम' (लाव-रामायण का एक नाम) की एक प्रतिलिपि १९३३ में करवाई थी। यह कार्य ६० खण्डों में समाप्त हुआ था, प्रत्येक खण्ड में २० ताड़पत्र थे। परन्तु १९४५ के जापानी आक्रमण के बाद इस पाण्डुलिपि का पता नहीं चला। १९६६ में लाओस के समाज-कल्याण मन्त्री केओ विफाकोन ने वक्तव्य दिया कि "लाव-रामायण की एक प्रति पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित है। इसमें ४० खण्ड हैं, प्रत्येक खण्ड में २० ताड़पत्र हैं। आजकल इसकी प्रतिलिपि कागज पर तैयार की जा रही है।" वियेनत्यान में बहुत पूछताछ करने पर भी हम इस ताड़पत्र को देखने में असमर्थ रहे थे। हमें केवल इतना बताया गया था कि इसे वाट प्र केओ में रखा गया है, जिसका उपयोग आजकल संग्रहालय के रूप में हो रहा है। संग्रहालय के कर्मचारी इन प्राचीन ताड़पत्रों को छूने और दिखाने में भी संकोच करते थे, इस भय से कि कहीं वे क्षतिग्रस्त न हो जायें। एक अन्य स्रोत से यह भी ज्ञात हुआ कि वाट प्र केओ में सुरक्षित पाण्डुलिपि का एक अंश 'थम्म' (धर्म)[1] लिपि में लिखा गया था और उसपर १९३१ ईस्वी की तिथि पड़ी हुई है। इसके अतिरिक्त एक अन्य मन्दिर वाट सी साकेत में भी (श्रीसाकेत–श्रीराम की राजधानी अयोध्या का एक नाम श्रीसाकेत भी है) दो पाण्डुलिपियों का पता चला।

उपर्युक्त विवरण के बावजूद, इसमें सन्देह नहीं कि फ्रेंच अध्येता एच० देदियेर और पी० बी० लाफ़ोन्त को प्र केओ में सुरक्षित अथवा किसी अन्य पाण्डुलिपि का ज्ञान अवश्य था, क्योंकि दोनों ने रामायण-कथा का सार संक्षेप और उसपर टिप्पणियां क्रमशः १९५८ और १९५७ में प्रकाशित कीं। लाफ़ोन्त ने अपनी कृति में भविष्य में सम्पूर्ण

१. हिन्द-चीन में 'धर्म' लिपि से तात्पर्य 'देवनागरी' से था।

लाव-रामायण का अनुवाद प्रकाशित करने की भी बात कही है, परन्तु लाओस की राजनीतिक उथल-पुथल और अस्थिरता को देखते हुए विश्वास नहीं होता कि जल्दी ही हम लाव-रामायण को पुस्तकाकार हाथ में लेकर उसका अध्ययन कर सकेंगे। १९७१-७२ में जब भारत में मानस-चतुश्शती मनाने का आयोजन हो रहा था, तब हमने सुझाव दिया था कि किसी भारतीय विद्वान् को लाओस जाकर लाव-रामायण की पाण्डुलिपि का सम्पादन और प्रकाशन करके उसका अनुवाद तैयार करना चाहिए। फलस्वरूप भारतीय सांस्कृतिक परिषद ने एक भारतीय अध्येता को रामायण-पाण्डुलिपियों की खोज और उनके प्रकाशन में सहायतार्थ लाओस भेजा और १९७३ में वियेनत्यान स्थित भारतीय राजदूतावास द्वारा उसका प्रकाशन भी हुआ। तब तक भारतीय शोध-कर्ता (सच्चिदानन्द सहाय) को छह पाण्डुलिपियां उपलब्ध करायी जा सकी थीं, जिनमें से एक वही ४३ खण्डों वाली थी जिसे वियेनत्यान के वाट प्र केओ में सुरक्षित रखा गया था। इसका प्रकाशित पाठ केवल लाव-भाषा और लाव-लिपि में है, और अभी तक उसका कोई अनुवाद उपलब्ध नहीं है। अतएव लाव-रामायण के लिखित पाठ पर आधारित विस्तृत और प्रामाणिक अध्ययन के लिए हमें अभी कुछ समय तक और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

हिन्द-चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण-कथा का स्वरूप

मलय प्रायद्वीप, थाइलैण्ड, कम्बोदिया और लाओस में अपने-अपने स्थानीय रामायण-कथानक हैं। मूल रूप में इन सबका सम्बन्ध श्रीराम के उस कथानक से है जिसे महर्षि वाल्मीकि ने अपनी 'रामायण' में श्लोकबद्ध किया है। इन सब देशों में श्रीराम की कथा की मूल घटनाएं एक-सी हैं; वाल्मीकि-वर्णित कथानक में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। परन्तु घटनाओं का विस्तार, पशु-पक्षियों और प्राकृतिक वैभव का वर्णन, रीति-रिवाज, तिथि-पर्व और भूगोल—इन सबको प्रत्येक देश में उसकी स्थानीय परिस्थितियों से लिया गया है। इस प्रकार यद्यपि लाओस की रामकथा अपने पड़ोसी थाइलैण्ड और कम्बोदिया की राम-कथाओं से बहुत साम्य रखती है, फिर भी उसकी बहुत-सी अपनी

स्थानीय भौगोलिक विशेषताएं हैं। थाइलैण्ड की 'रामकियेन' (राम-कीर्ति) और कम्बोदिया की 'रामकीर्ति' लाओस में प्रचलित रामायण-कथा से पूर्व की कृतियां प्रतीत होती हैं।

लाओस में रामकथा के दो संस्करण

लाओस में रामकथा के दो संस्करण उपलब्ध हैं। प्रथम राज-निवास लुआङ प्रबाङ नगरी का संस्करण और द्वितीय वियेनत्यान की राजधानी और वियेनत्यान प्रदेश में प्रचलित संस्करण। लुआङ प्रबाङ की रामकथा उस नगरी के दो प्रसिद्ध मन्दिरों, वाट पऽ केऽ तथा वाट माइ में भित्तिचित्रित है। जबकि वियेनत्यान की रामकथा मन्दिरों के चित्रों और लिखित पाण्डुलिपियों पर आधारित है। राजप्रासाद और महाराजा के व्यक्तिगत निरीक्षण, प्रोत्साहन और संस्कृत भाषा-प्रेम के कारण लुआङ प्रबाङ की रामायण अपने थाइ और भारतीय स्रोतों के अधिक निकट है। वियेनत्यान संस्करण के एक ग्रन्थ 'फा लाक फा लाम' (प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम) का सार-संक्षेप ला फ़ोन्त ने अपनी एक कृति में दिया है।[2] यद्यपि यह कृति भारतीय रामायण पर आधारित है, परन्तु यह उसका अनुवाद नहीं है। उलटे यह एक मौलिक कृति प्रतीत होती है, जिसकी रचना १९वीं शती ईस्वी के पूर्वार्ध में हुई, और जिसे लगभग १०० वर्ष बाद लिपिबद्ध किया गया। यहां रामायण ग्रन्थ की लोकधारणा की अद्भुत शक्ति द्रष्टव्य है। भारत में मुग़लशासन के दुःखद काल में विक्रम संवत् १६३१-१६८० के बीच तुलसी-रामायण की रचना हुई, और होते ही वह भारतीय जन-मानस पर छा गयी। संयोग से उसी प्रकार जब १८वीं और १९वीं सदी के प्रारंभ में लाओस पर डचों तथा अन्य पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के पंजे जमने लगे तब वियेनत्यान में स्वतन्त्र राष्ट्रीय स्रोतों से उत्स्यूत रामायण 'फा लाक फा लाम' की रचना हुई।

भारतीय अध्येता सच्चिदानन्द सहाय को 'फा लाक फा लाम'

२. पी. बी. लाफ़ोन्त 'फा लाक फा लाम', एकोल फ्रान्सेज द एक्स्ट्रीम ओरियां, भाग ६ (१९५७)

की एक भी प्रति ऐसी नहीं मिली जो १९३१ ईस्वी से पूर्व की हो। सहाय के अध्ययन के अनुसार 'फा लाक फा लाम' का रचयिता फुत्थ-फोचन (बुद्धघोषाचार्य) नाम का एक बौद्ध भिक्षु था जो १८५० ईस्वी के आसपास वियेनत्यान नगरी में रहता था। फुत्थफोचन ने अपने ग्रन्थ में केवल वियेनत्यान को ही महत्त्व दिया है। उसने लुआङ प्रबाङ का नामोल्लेख तक नहीं किया है जो १७वीं शती ईस्वी के अन्त तक संयुक्त लाओस की प्रमुख राजधानी थी। १७११ से १७३१ ईस्वी के बीच लाओस तीन भागों में विभाजित हो गया था, तथा लुआङ प्रबाङ वियेनत्यान और चम्पास्साक एक-दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता कर रहे थे। 'फा लाक फा लाम' के अनुसार श्रीराम वियेनत्यान के शक्तिशाली शासक थे, आसपास के प्रदेशों पर उनका पर्याप्त प्रभुत्व था। श्रीराम को अन्य राजपरिवारों से वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी राजनीतिक शक्ति परिपुष्ट करते दिखाया गया है। लंका-विजय के उपरान्त राम और लक्ष्मण थाइ-भूमि को पार कर वियेनत्यान लौटते हुए बताए जाते हैं। मार्ग में वे कई नगरों का निर्माण करते हैं, जिनमें से एक अयुथ्या है। वर्तमान थाइलैण्ड में यह नगर आज भी इसी नाम से देखा जा सकता है। उनके द्वारा स्थापित अन्य नगर हैं—पिसानुलोक (विष्णु-लोक) और नखोन सवान (नगर स्वर्ग)। यहां तक कथा के इस भाग का लाओस के यथार्थ इतिहास से सामंजस्य बैठता है, क्योंकि लाओस द्वारा अयुथ्या और पिसानुलोक के खिलाफ़ सैनिक अभियान किये गये थे और वैवाहिक संबंधों द्वारा उनसे सन्धियां भी की गयी थीं। श्रीराम के राज्य का विस्तार वियेनत्यान से लेकर ख्मेर राज्य की राजधानी इन्थपत्थनखोन (इन्द्रप्रस्थनगर) तक था। राम और लक्ष्मण के पुत्रों को उत्तर-पूर्वी थाइलैण्ड के एक बड़े भाग पर शासन करते दिखाया गया है। वास्तव में लाओस आज तक थाइलैण्ड के मेकांग नदी के उत्तरी किनारे के एक बड़े भाग पर अपने अधिकार का दावा करता आया है। उपर्युक्त विवरण से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि रामायण के वियेनत्यान संस्करण का लेखक १७३१ के बाद की राज-नीतिक घटनाओं का वर्णन कर रहा है जब वियेनत्यान ने लुआङ प्रबाङ से अलग होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की थी। बहुत

संभव है कि लेखक बुद्धघोषाचार्य वियेनत्यान के राजदरबार का कवि था जो अपने राजा और नगर की यशोगाथा गाना चाहता था, अतएव अपनी कृति को स्थायित्व और लोकप्रियता प्रदान करने हेतु उसने अपनी कहानी को रामायण की प्रसिद्ध कथा से जोड़ दिया। वियेनत्यान राज्य का अलग वर्चस्व बहुत थोड़े दिनों तक रहा, १७११ से १८२९ ईस्वी तक लगभग १२० वर्ष। इस बीच केवल एक ही राजा चाओ अनु (१८०४-१८२८ ईस्वी) ऐसा हुआ जिसने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए जीतोड़ परिश्रम किया, और बराबर थाइ झड़पों से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा का प्रयास करता रहा। चाओ अनु के प्रभाव का सिक्का चम्पास्साक तक अनुभव किया जाता था, वहां के राजा इन्हीं-की सहायता से अपने भीतरी विद्रोहों को दबाने में सफल होते थे। इसके अतिरिक्त इन दोनों राजाओं ने मिलकर कम से कम तीन बार अपनी सेनाओं को थाइलैण्ड से लोहा लेने और उसके प्रभाव को समाप्त करने के लिए भेजा था। अतएव उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकालना कदाचित् गलत न होगा कि 'फा लाक फा लाम' का प्रणेता वियेनत्यान के शासक चाओ अनु का समकालीन था, और १८५० ईस्वी से पूर्व उसकी कृति का वियेनत्यान में प्रचलन हो गया था। अपनी भूमिका में सहाय ने कतिपय अन्य पाठगत तथ्यों का उल्लेख किया है, जिनसे उपर्युक्त मत को बल मिलता है।

लाव-रामायण के पात्र

लाव-रामायण के पात्रों की परिकल्पना सर्वथा नवीन और ताज़गी से भरी हुई है। मूल कथानक के ताने-बाने के अतिरिक्त इन पात्रों का वाल्मीकीय रामायण से विशेष संबन्ध नहीं दिखाई देता। अपने आच-रण और व्यवहार में वे सर्वथा लाव हैं और लाव-परम्परा तथा रीति-रिवाजों का बड़ी निष्ठा से पालन करते है। सामाजिक जीवन, वेश-भूषा, भोजन तथा दैनिक जीवन की अन्य बातें लाव-पद्धति का अनु-सरण करती हैं। पशु-पक्षियों और पराचेतन जगत् से निरन्तर सम्पर्क बना रहता है, जो कि लाव-जीवन की एक विशेषता है। समस्त महा-काव्यों की परम्परा में लाव-काव्य में स्थान-स्थान पर लम्बे शृंगारिक

वर्णन पिरोए गये हैं। यहां तक कि यह लाव-कृति अपने-आप में लाव-जीवन का एक बृहत् सांस्कृतिक कोष बन गयी है । लाओस के सांस्कृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक अध्ययन के सन्दर्भ में 'फा लाक फा लाम' का महत्त्व इसलिए और भी बढ़ जाता है, क्योंकि अन्य कृतियों के अभाव में यह अपने-आप में अकेली पुस्तक है जो लाव-जीवन और लाओस में रहने वाले मनुष्यों, वन-नदी-पर्वतों, और पशु-पक्षियों की अधिकृत रूप से जानकारी देती है।

बृहत्तर भारत अथवा दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों की रामायण-कथा जिसमें लाओस, मलयेसिया, थाइलैण्ड और कम्बोदिया शामिल हैं, के संबन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ये सभी दक्षिण भारत और बंगाल में प्रचलित स्थानीय रामायण कथानकों के अतिनिकट जान पड़ती हैं। फलस्वरूप वाल्मीकि-रामायण में वर्णित नैतिकता और सदाचरण के आदर्श और सत्य की उत्कट प्रतिष्ठा इनमें नहीं दिखाई देती। इन सभी रामायणों में और लाव रामायण में भी तर्क और मानवीय संबन्धों की पवित्रता (विशेष कर स्त्री-पुरुषों के संबन्धों में) को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। उनके अपने तर्क और भावनाएं हैं जिनके अनुरूप उनके स्थायी अथवा अस्थायी संबन्ध बनते हैं और कार्य किये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप श्रीराम और हनुमान जैसे मुख्य पात्र भी संयोगवश यदि किसी स्त्री से भेंट करते हैं, तो उसके साथ संबन्ध स्थापित कर उससे सन्तान उत्पन्न कर लेते हैं। यह स्थिति लुआङ प्रबाङ की रामायण की अपेक्षा वियेनत्यान के रामायण-संस्करण में अधिक दिखाई पड़ती है। लाव-नैतिकता के अनुसार रावण भी अपनी पराजय के बाद श्रीराम को वापसी यात्रा के लिए अपनी नाव भेंट करता है। सहिष्णुता की यह भावना कहीं-कहीं उदासीनता की सीमा पर जा पहुंचती है, जिससे देश का अहित हो सकता है। फिर भी लाव-जीवन में शत्रु और मित्रभाव स्थायी नहीं होते। वे विशाल जीवन-सागर में उठने वाली तरंगों के समान हैं जो अन्ततः करुणा और मैत्री की क्रोड़ में विलीन हो जाने वाली हैं। एक प्रकार से यह वाल्मीकि के दर्शन का ही दूसरा रूप है, क्योंकि रावण की मृत्यु के बाद विभीषण से उसकी अंत्येष्टि क्रिया कराने के हेतु उन्होंने श्रीराम से

कहलवाया था, "विभीषण, 'मरणान्तानि वैराणि', मरणोपरान्त सब वैर समाप्त हो जाते हैं। उठो और इसकी अन्त्येष्टि करो; जैसा यह तुम्हारा भाई है वैसा यह मेरा भी है !"

'फा लाक फा लाम', 'फोम्मचाक' और लाव-रामायण का भूगोल

पी० बी० लाफोन्त को लाव-रामायण की दो धाराएं ढूंढ़ने में सफलता मिली थी। प्रथम 'फा लाक फा लाम' जो वियेनत्यान-क्षेत्र में प्रचलित थी, दूसरी 'फोम्मचाक' (ब्रह्मचक्र) जो उत्तर में मेकांग नदी की ऊपरी घाटियों के मुओङ सिङ प्रदेश में पायी गयी थी।

'फा लाक फा लाम'

लाओस के अतिरिक्त दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य देशों में रामायण-कथा के अन्तर्गत आने वाले भौगोलिक नामों को उनके मूल भारतीय स्वरूप में ही सुरक्षित रखा गया है। इसके विपरीत लाव-रामायण का समस्त घटनाक्रम लाओस में और वह भी मेकांग नदी की घाटी में ही घटित होता है। 'फा लाक फा लाम' के द्वारा लाओस के मध्य भाग के भूगोल की बहुत अच्छी और सच्ची जानकारी प्राप्त होती है। इसकी पाण्डुलिपि के प्रथम २० 'फुक' (पृष्ठ) का रामायण के कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे मध्य मेकांग घाटी के लोक-भूगोल का विस्तृत वर्णन करते हैं, जो बाद में रामायण के पात्रों की जन्म और कर्मभूमि बनेगी। लाव-जनता का विश्वास है कि भगवान बुद्ध ने स्वयं सेत्तवन (श्रेष्ठवन) पगोडा के भिक्षुओं के समक्ष अपने श्रीमुख से 'फा लाक फा लाम' की कथा सुनाई थी। इस विश्वास के कारण लाओस में लाव-रामायण की लोकप्रियता और भी अधिक बढ़ गयी है।

'फोम्मचाक'

बौद्ध भिक्षुओं ने रामायण-कथा को अपने धर्म के अनुकूल बनाने के लिए उसका 'फोम्मचाक' अथवा 'ब्रह्मचक्र' नाम से रूपान्तरण कर लिया। यहां रामायण-कथा को बुद्ध के पूर्वजन्म की एक कथा माना गया है। राम स्वयं भगवान् बुद्ध हैं, रावण देवदत्त है और सीता यशो-

धरा हैं। 'फा लाक फा लाम' की तुलना में रामायण का यह बौद्ध संस्करण अधिक लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सका क्योंकि बौद्धभिक्षु अपनी कहानी के अनुरूप शिल्प, प्रतिमाओं और सुन्दर नाट्यविधा की परिकल्पना नहीं कर सके। अतः एक प्रत्यक्ष दृश्य सांस्कृतिक चित्रांकन के अभाव में मूल कथा का परिवर्तित बौद्ध-प्रारूप लोकमानस पर अधिकार नहीं कर सका।[३]

रामायण के पात्रों के नामों में ध्वनि अथवा स्वर-वैज्ञानिक परिवर्तन

लाव भाषा की अपनी विशिष्ट स्वर-योजना के कारण वाल्मीकि-रामायण के पात्रों के शास्त्रसम्मत नामों में परिवर्तन हुए हैं। जैसे :

संस्कृत	**लाव**
राम	पा लाम, फा लाम, लम्मा
लक्ष्मण	पा लाक, फा लाक
रावण	हाफनसुआन, पोम्मचाक
हनुमान	हनुमोन
सीता	नांग सीडा
लंका	लंग्का
सुग्रीव	सुक्रीप, साङखीप आदि

लाव तथा वाल्मीकि-रामायण में प्रमुख अन्तर

लाव-रामायण में (१) वाल्मीकि-रामायण की तुलना में श्रीराम को बहुत कम महत्व की और गौण भूमिका दी गयी है। यहां तक कि समस्त कथानक में उनकी उपस्थिति एक अपरिचित की-सी लगती है।

३. सहाय के अनुसार 'फा लाक फा लाम' को भी उसके रचियता ने बौद्ध-जातक माना है, और वह प्रत्येक अवसर पर बौद्ध सिद्धान्तों का उल्लेख करने से भी नहीं चूकता। जैसे एक स्थान पर श्रीराम, बोधिसत्त्व के रूप में हाथियों और हल चलाने वाले बैलों और पशुओं तक को बौद्ध धर्मोपदेश करते हुए दिखाए गए हैं। परन्तु कथा के इन बौद्ध धर्म से संबंधित संदर्भों का वहां की जनसंस्कृति पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

(२) लाव-कथा का यथार्थ नायक रावण है। वाल्मीकि-रामायण के समान उसके दस सिर और बीस भुजाएं नहीं हैं। इसके विपरीत वह एक चतुर और सुशिक्षित युवक है, जो शरीरगत सौन्दर्य-सुषमा से सम्पन्न इन्द्र का विशेष कृपापात्र है।

(३) लाव-कथा में सीता की भूमिका अपेक्षाकृत संक्षिप्त और कम महत्व की है। वह रावण की पुत्री है, और लंकेश्वर के आकर्षण से पूर्णतया मुक्त नहीं है।

(४) हनुमान श्रीराम के पुत्र हैं। कथा के अन्त में वे अपनी वानर-त्वचा का विमोचन कर देते हैं।

(५) लाव-रामायण के सब पात्र लाव-भाषा में वार्तालाप करते हैं और उनके आचरण लाव सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल हैं।

वाट पऽकेऽ के भित्तिचित्रों पर आधारित 'फा लाक फा लाम' की कथा

महाराजा सवङ वत्थन के आदेश से एक अनुभवी मार्गदर्शक ने हमें १९६१ की जुलाई, ५, ६, ७, ८, ९ और १० को वाट पऽकेऽ के चित्र दिखाए।

प्रथम चित्र जिससे हमने आरंभ किया लंका के राजा थोसोकोन्थो का है। उसके आदेश से सिउ हान राजधानी की रक्षा कर रहा है। उसने अपनी दीर्घकाय जिह्वा से नगरी को घेर रखा है। जिह्वा में निद्रा-उत्पादन की अद्भुत शक्ति है। चित्र में हाफ़न (रावण) की सेनाएं प्रसुप्त पड़ी हैं। थोसोकोन्थो की आकृति सुनहले रंग की है, सैनिक इधर-उधर पड़े अस्तव्यस्त निद्रामग्न हैं।

दूसरे चित्र में सवन (स्वर्ग) में फा इन (इन्द्र) नोन्थोक सहित दिखाई देते हैं। सवन में एक श्वेतवर्ण का पर्वताकार स्थापत्य है, केत केओ चुल्लमनि (केश मरकत चूडामणि); इस स्तूप में तथागत के केश सुरक्षित हैं। फा इन की आज्ञा से नोन्थोक स्वर्ग की रक्षा करता है। इन्द्र की आज्ञा से वह स्वर्ग में आने वाली प्रत्येक स्त्री के पाद-प्रक्षालन करता है। इन्द्र ने उसकी तर्जनी में ऐसी शक्ति दे दी है कि वह जिसकी ओर उठ जाये, उसकी मृत्यु हो जाती है। देवताओं को यह अच्छा नहीं लगता। वे इन्द्र से उसकी शक्ति का हरण करने के लिए

कहते हैं। इन्द्र स्वयं यह नहीं कर सकते, केवल क्षीरसागर में विश्राम करते फा नाराइ (नारायण) ही यह कर सकते हैं। देवताओं की प्रार्थना से फा नाराइ मोहिनी स्त्री का रूप धारण कर नोन्थोक के सामने नृत्य करते हैं। नोन्थोक मोहिनी पर मोहित होकर उससे विवाह करना चाहता है; इसके लिए उसे पहले उसके साथ नृत्य करना पड़ेगा। मोहिनी का रूप धारण किये फा नाराइ कुशलतापूर्वक नोन्थोक की उंगली को उसकी अपनी ओर उठवा देते हैं। नोन्थोक मर जाता है।

यही नोन्थोक थोसोकोन्थो के रूप में पुनः जन्म लेता है। फा नाराइ फा लाम के रूप में अवतरित होते हैं।

अगले चित्र में लंग्का का विस्तृत दृश्य है जहां नोन्थोक का थोसोकोन्थो के रूप में जन्म हो चुका है। निकट ही फा नाराइ का समुद्र में शेषशय्या पर लेटे हुए भव्य चित्र है; उनके निकट फा इन के दो दूत खड़े हुए हैं जो उनसे सवन में आकर नोन्थोक को मारने की प्रार्थना करते हैं।

तीसरा चित्र सी अयुथ्या फा लाम की राजधानी का है। फा लाक, फा फ़ोत, फा सत्रु सबके शरीर श्वेत दिखाये गये हैं; अकेले फा लाम का शरीर श्यामवर्ण का है। चित्र में नीचे की ओर फा लाम के हाथी की अत्यन्त सुन्दर चित्रकारी की गयी है। एक कोने में कैकेसी है, वह थोसोरोथ की द्वितीय पत्नी है। दूसरे कोने में उसके दोनों पुत्रों फा फ़ोत और फा सत्रु का 'बास्सी'-संस्कार सम्पन्न हो रहा है।[४] हमारा मार्गदर्शक हमें बताता है कि कौसिल्या, पहली पत्नी के दो पुत्र हैं फा लाक और फा लाम। अगले चित्र में ये दोनों भाई अपने पिता और माता के साथ बैठे हैं, बहुत बड़ी संख्या में सेवक उनकी शुश्रूषा कर रहे हैं। नीचे

४. लाओस के धार्मिक जीवन में 'बास्सी' का बहुत महत्त्व है। इसे 'सुखुआन' भी कहते हैं। 'सुखुआन' अर्थात् आत्मा का आह्वान, आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत करना। जन्म, विवाह, यात्रा, किसी भी अवसर पर स्वागत और शुभकामना प्रकट करने के लिए 'बास्सी' आयोजित की जाती है। बहुत करके इसकी प्रक्रिया धूप-पुष्पादि से हिन्दू धार्मिक पूजा की भांति कलाई पर सफेद कच्चा धागा बांध कर की जाती है। लाव-विद्वानों के अनुसार 'बास्सी' में इतनी शक्ति है कि वह साधारण बैल को 'वृषभराट्' और सर्प को 'नागराज' में परिवर्तित कर सकती है।

की ओर थोसोरोथ विद्रोहियों को अपसारित करते दिखाए गए हैं। मार्ग में उनके रथ का एक पहिया अलग हो जाता है। कैकेसी तब अपने दो वर मांगती है, एक जिससे उसका पुत्र फा लाम के स्थान पर राजा हो और छोटे लड़के फा सत्रु को युवराज बनाया जाय। (हमारा मार्ग-दर्शक कैकेयी के दूसरे वर के बारे में विशेष रूप से उल्लेख नहीं करता।) इसी चित्र के शीर्ष भाग में हनुमोन की माता नांग सवाहा को दिखाया गया है। नांग सवाहा मानुषी है, वानरी नहीं नांग खाइसी और एक रिसि सवाहा के माता-पिता हैं। हनुमोन के पिता का नाम फा फाइ (वायु) है।

इस चित्र पर वर्षा का पानी गिरने से इसकी दुर्दशा हो गयी है।

हनुमोन के जन्म की कथा

एक दिन नांग खाइसी अकेली थीं कि उन्हें स्वप्न में फा इन दिखाई दिये। फा इन को ज्ञात हुआ कि खाइसी उन पर अनुरक्त हैं, अतः वह नीचे उतर आये। इस सम्बन्ध से फा ली (बाली) का जन्म हुआ। एक अन्य अवसर पर नांग खाइसी ने सूर्य से सहवास किया और साङ खीप (सुग्रीव) का जन्म हुआ। एक दिन सवाहा ने अपने पिता से कहा कि उसने अपनी माता के कक्ष में दो पुरुषों को प्रवेश करते देखा था; एक का वर्ण लाल था (सूर्य), दूसरे का हरा (इन्द्र)। और साङ खीप और फाली उनके पुत्र नहीं हैं। यह सुनते ही रिसि ने क्रोध में भरकर सवाहा समेत तीनों बालकों को उठाकर पानी में फेंक दिया। सवाहा तो लौट-कर अपने पिता के पास आ गयी, परन्तु दोनों बालक साङ खीप और फाली जंगल में जाकर अपने पिता के शाप से वानर बन गये। चित्र में फाली का रंग हरा है, साङ खीप लाल है।

जब फा इन और सूरिय को ज्ञात हुआ कि उनके पुत्र वन में वानरों के रूप में रह रहे हैं, तो वे पृथ्वी पर आये और उनके लिए खिटकिन (किष्किन्धा) नामक नगरी का निर्माण किया। चित्र में खिटकिन में दो अलग प्रासाद दिखाये गये हैं, एक फाली के लिए, दूसरा साङ खीप के लिए।

नांग खाइसी को भी जब अपनी बेटी के कृत्य का पता चला, तो

उसने उसे शाप दिया कि तू एक पैर पर खड़ी होकर केवल वायु का भक्षण कर। चित्र में सवाहा को उसी स्थिति में वायु का भक्षण करते हुए दिखाया गया है। फा इन को जब सवाहा की दुर्गति का पता चला तो उन्होंने फा फाइ (वायु) को उसे शाप से मुक्त कराने भेजा। फा फाइ और सवाहा का विवाह हो गया और हनुमोन का जन्म हुआ। एक बहुत बड़े फलक पर हनुमोन को अत्यन्त प्रभायुक्त श्वेत रंग में दिखाया गया है, उनके निकट साङ खीप सेवक की मुद्रा में खड़े हैं;[५] ये दोनों फा लाक और फा लाम की अनुचर्या कर रहे हैं। फा लाम के शरीर का रंग हरा है जब कि फा लाक श्वेत हैं। इस चित्र की रंगयोजना अत्यन्त आकर्षक है।

हनुमोन का शैशव

हनुमोन जन्म से ही पूर्ण युवा थे। पैदा होते ही वे खाने, बोलने और उड़ने लगे थे। एक दिन प्रातःकालीन सूर्य को पका हुआ फल समझकर वे उसे खाने दौड़े। सूरिय (सूर्य) ने घूम कर हनुमोन को देखा, जिससे वे जल गये। उनका केवल एक बाल बचा जो सूर्य के रथ से चिपका रह गया। सूर्य ने इस बाल से उनका पुनर्निर्माण किया और कहा, "तुम पृथ्वी पर जाओ और फा लाम के अनुचर बन जाओ। फा लाम का अनुचर बन जाने पर तुम अजेय हो जाओगे।" हनुमोन जब पृथ्वी पर आये तो अपने जन्मस्थान के निकट अपनी माता से मिले। उनकी माता उन्हें फाली और साङ खीप के नगर में ले गयीं।

अगले चित्र में मुनि स्वामित(विश्वामित्र) शांति के लिए तप कर रहे हैं। हाफन ने एक स्त्री को भेजा था, जिसने कौवे का रूप धारण कर उनके तप को भंग किया। तब मुनि स्वामित राजा थोसोरोथ के पास उनके दोनों पुत्रों फा लाम, फा लाक को मांगने गये कि वे आकर उस कौवे का वध कर सकें। दोनों राजकुमार आये और उन्होंने कौवे

५. समस्त बृहत्तर भारत में हनुमान—'महान् श्वेत वानर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका रूपांकन भी उनके पुष्ट शरीर को चमकते हुए श्वेत-लम्बे रोओं से सर्वथा ढक कर किया जाता है, जिसके ऊपर आभूषण सजे रहते हैं।

का वध कर दिया। सीडा थोसोकोन्थो की पुत्री है और उसकी माता मुन्थो (मन्दोदरी) है।

सीडा का जन्म

जब सीडा का जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने बताया कि यह लड़की अशुभ है, यदि यह यहां रही तो नगर पर शत्रु का आक्रमण होगा। फलस्वरूप माता-पिता ने उसे लकड़ी के बेड़े पर रखकर नदी में बहा दिया। सी सनोक (जनक) नाम के एक ऋषि उसे उठाकर मिथिला ले आये। सनोक मिथिला के राजा थे, तप करने के लिये उन्होंने नगर छोड़ दिया था, परन्तु सीडा को पाकर वे मिथिला लौट आये। १६ वर्ष की आयु तक सनोक ने सीडा का पालन किया, तदुपरान्त उन्होंने घोषणा की कि वे अपनी पुत्री सीडा का विवाह उसी राजकुमार से करेंगे, जो उनके लोहे के धनुष को उठा सकेगा। मुनि स्वामित्त को इसका पता चला और उन्होंने फा लाम को धनुष उठाने भेज दिया। फा लाम ने धनुष उठा लिया। सीडा से उनका विवाह हो गया। सीडा और फा लाम के विवाह का चित्र एक बहुत बड़े फलक पर दिखाया गया है। राजमहल के सामने एक बहुत बड़ा सोने का रथ खड़ा है। सफ़ेद रंग के घोड़े उसे खींच रहे हैं। उससे आगे के रथ में श्वेत और भूरे घोड़े जुते हैं। पास में अनेकों दास हैं।

फा लाम का वनगमन

विवाह के उपरान्त फा लाम अपनी पत्नी को अयुध्या ले आये। परन्तु कैकेमी यह सब देख रही थी, उसने नगर के द्वार बन्द करवा दिये जिससे फा लाम को वापस वन में लौटना पड़ा। वन में उन्हें मार्ग में एक बहुत बड़ा पत्थर पड़ा मिला। वे उसपर बाण मारते हैं जिससे उसके दो टुकड़े हो जाते हैं और भीतर से एक देवकन्या निकलती है। वह स्वर्ग चली जाती है। चित्र में पत्थर को अग्नि-ज्वालाओं से घिरा हुआ दिखाया गया है। उस स्त्री (अहल्या) को फा इन ने पाषाण बना-कर दण्डित किया था, और उसके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर दी थी जिससे कोई उसके निकट न आ सके।

इस घटना के बाद फा लाक, फा लाम और सीडा एक रिसि के आश्रम में जाते हैं, जहां उन्हें एक अद्भुत शक्ति-सम्पन्न वस्त्र दिया जाता है। जो कोई उस वस्त्र को धारण करता है, अजेय हो जाता है। इस चित्र की आकृतियां बहुत स्पष्ट हैं, और इसके रंग पूर्ण सुरक्षित हैं। गहरे नीले रंग, चमकते लाल और सुनहली आकृतियां, साथ में वन का विविधवर्णी प्रभावी वातावरण।

चित्र के निचले भाग में तीन सुन्दर पर्णकुटी बनी हुई हैं। इन्हें फा लाक, फा लाम ने बनाया है, वे अब इनमें निवास करते हैं। एक दिन फा लाक वन में फल-मूल संचय के लिये गये, उन्होंने वहां कुंभकात को (कुंभकर्ण) तपस्या करते देखा। उनके सामने एक तलवार पड़ी हुई है। कुंभकात फा इन को प्रसन्न करने के लिए तपस्या कर रहे थे, जिससे कि वे उन्हें ऐसा अस्त्र प्रदान कर दें जिसके द्वारा वे अजेय हो जायें। फा इन ने स्वर्ग से उनके निकट पृथ्वी पर एक तलवार फेंक दी। कुंभकात ने उसे नहीं उठाया, क्योंकि तलवार आदरपूर्वक उनके हाथ में दी जानी चाहिए थी, फेंकी नहीं जानी थी। फा लाक तलवार को उठा लेते हैं, और दोनों में युद्ध आरंभ हो जाता है। कुंभकात पराजित होते हैं; फा लाक टोकरी-भर फल और तलवार ले जाकर फा लाम को देते हैं। इस सब घटनाक्रम को सीडा अपनी कुटी में बैठी देखती रहती है। यह चित्र सर्वाधिक सुरक्षित दशा में है। फलों का चित्रण अद्भुत है।

लंग्का की राजधानी

इसके बाद वाले चित्र में थोसोकोन्थो की नगरी लंग्का दिखाई गयी है। थोसोकोन्थो एक दिन अपनी तीन सुन्दरी पत्नियों सहित सुवर्ण-रथ पर चढ़कर शिकार खेलने गया। अपनी अनुपस्थिति में उसने अपने सेनापति सिउ हान(सिंह) से लंग्का की रक्षा करने के लिए कहा। लौटने पर उसे अपनी नगरी नहीं दिखाई पड़ी, सिउ हान ने सम्पूर्ण नगरी को अपनी जिह्वा से लपेटकर अदृश्य बना दिया था। थोसोकोन्थो ने सिउ हान के ऊपर अपना अस्त्र फेंका जिससे उसकी जिह्वा कट गयी। सिउ हान की मृत्यु हो गयी, और लंग्का नगरी फिर दिखाई देने लगी। लंग्का का शिल्प अत्यन्त सुन्दर है, भवनों की छतें

मेघपटलों के समान एक-दूसरे के ऊपर बल खाती हुई ऊपर को मुड़ी हैं और सुनहरी रेखाओं से अलंकृत हैं। भित्तियों का रंग लाल है, सुवर्ण स्तम्भ हैं जिनपर बहुत बारीकी से अनेक रंगों में काम किया गया है। पीछे पृष्ठभूमि में समुद्र, शिलाएं, वृक्ष और उपवनों से युक्त दृश्यावली है।

समनखा का प्रतिशोध

सिउ हान की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी समनखा (शूर्पणखा) को लंका से निर्वासित कर दिया जाता है। समनखा यक्षिणी थी, अतः उसने सुन्दरी स्त्री का रूप धारण कर फा लाक से विवाह करने की कामना की। फा लाम को जब उसकी चाल का पता चला तो उन्होंने उसके पांवों और गर्दन को दो बांसों के बीच दबा कर दण्डित किया, और फिर उठा कर फेंक दिया। समनखा को बहुत अधिक मार पड़ी थी; उसने जाकर थोसोकोन्थो से शिकायत की। थोसोकोन्थो घटनास्थल का निरीक्षण करने गया। वहां सीडा को देखकर वह उस पर मोहित हो गया।

(इस स्थल तक पहुंचने पर कहानी में ठहराव आता है, क्योंकि आगे की सारी दीवार विशालकाय भगवान् बुद्ध की धातु प्रतिमा से घिरी हुई है। मुख्य प्रतिमा के इर्द-गिर्द बौद्ध धर्म के अनेकों प्रभायुक्त व्यक्तित्वों और बोधिसत्त्वों की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। बुद्ध की विशाल प्रतिमा चमकते पीतल की बनी है; उनके वस्त्रों को तांबे में बड़ी बारीकी से ढाला गया है। इसकी ऊंचाई लगभग ४५ फुट (१५ मीटर) है।)

सीडा का हरण

अगले सम्पूर्ण फलक पर सीडा का अपहरण दिखाया गया है। हाफन सुवर्णमृग को लेकर आता है, और फा लाक फा लाम को अपनी-अपनी पर्णशालाओं में बैठा हुआ देखता है। वह मारीस (मारीच) को सीडा की कुटी के सामने भेजता है, सीडा फा लाम से उसे मारकर लाने को कहती है। लाम जाते हैं और उसे मार कर ले आते हैं; उसका सिर

मनुष्य का है परन्तु शरीर सुवर्णमृग का है। मार्ग में उन्हें फा लाक आते हुए मिलते हैं, जिन्हें सीडा ने उनके पास मारीस की आवाज सुनने के बाद भेजा था। लौटने पर दोनों भ्राता देखते हैं कि सीडा अनुपस्थित हैं। हाफन उन्हें चुरा ले गया है। चित्र के दायीं ओर हाफन के सैनिक वृक्षों के पीछे छिपे दिखायी देते हैं, उसके रथ का एक भाग भी दिखाया गया है। वनप्रान्तर में बादामी, किशमिशी और पीले रंगों का वैभव व्याप्त है, बीच-बीच में हरित, अर्धहरित पत्र-पल्लव सुशोभित हैं।

अगले चित्र में रावण-जटायु युद्ध चित्रित है। जटायु स्वयं अपनी मृत्यु का रहस्य बता देता है। उसकी मृत्यु केवल सीडा की अंगूठी के स्पर्श से ही हो सकती है। हाफन सीडा की अंगूठी उतार लेता है, और उसे जटायु के ऊपर फेंकता है। जटायु का प्राणान्त हो जाता है। तब हाफन सीडा को अपने घर ले आता है। चित्र के निचले भाग में हाफन और मोन्थो अपने राज प्रासाद में बैठे हैं। वे दोनों सीडा के जननी-जनक हैं।

फा लाक, फा लाम हनुमोन से मिलते हैं

आगे के चित्र में फा लाक फा लाम सीडा की खोज कर रहे हैं। उनकी भेंट हनुमोन और साङ खीप से होती है और बाणों वाली घटना घटित होती है। घटना इस प्रकार है : हनुमोन एक वृक्ष के ऊपर चढ़े बैठे हैं, कि फा लाक उन्हें लक्ष्य कर बाण मारते हैं। प्रत्येक बाण को हनुमोन अपने हाथों में रोक लेते हैं। फा लाक के पास जब केवल एक बाण बच रहता है, तो वे मुड़कर फा लाम से कहते हैं कि यह तो शक्तिशाली वानर जान पड़ता है, अब इससे कैसे व्यवहार किया जाये। फा लाम कहते हैं, "यह वानर हमारा मित्र है।" इसे साथ लेकर वे दोनों सीडा की खोज में चले जाते हैं।

अगले दिन हमारे मार्गदर्शक ने इस कथा में थोड़ा परिवर्तन किया। फा लाक फा लाम एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। उसी समय सूरिय ने उन्हें फा लाम के पास भेजा और वे उसी वृक्ष के ऊपर आकर बैठ गये। उन्होंने जब फा लाक के सब बाणों को अपने हाथों से रोक



चित्र संख्या (५) स्थान फा इन का महल। लुम लू अपने नये मांचे को देख रहा है जो स्वयं फा इन के समान सुन्दर है। इन्द्र की पत्नी नाग सुजाता को ज्ञात हो गया है कि उसे धोखे से अपने पति के प्रति अनाचार का दोषी बनाया गया है। चित्र में वह अपने पति फा इन से पृथ्वी पर आकर दण्डित होने की प्रार्थना करती है।



चित्र संख्या (७) रावण अपने उद्यान की दीवार पर बैठा है। वह अपनी पुत्री सीता को हाथों से उठाकर दूर हिमालय पर्वत-स्थित एक सरोवर में फेंक देता है। चित्र में बायीं ओर रिसि छनक हैं। वे प्रातःकाल पुष्पचयन के लिए गये थे। वे नांग सीडा को उठाकर अपनी उटज में ले जाते हैं।



चित्र संख्या (९) नाग मीडा के लिए अलग मे केवल एक खम्भे के ऊपर घर बनाया गया है। मीडा के लिए इस प्रकार का घर एक प्राचीन लाव-लोककथा के आधार पर बनाया गया है। अकेली ऊंचाई पर बने इस घर की विधा मे मीडा का उच्च कुल उसका दुर्भाग्य और अकेलापन व्यक्त होता है।



चित्र संख्या (११) रिसि तोतम अपने शरीर को रगड़ कर, उसके मैल से अपने लिए पत्नी का निर्माण कर रहे हैं। उनके सामने पुष्पों और पूजा-सामग्री से भरा चांदी का पात्र रखा है। चित्र में बायीं ओर उनकी पत्नी अपने तीन बालकों के साथ बैठी है; इनमें से कन्या रिसि की सन्तान है, बाकी दोनों लड़के फा अथित और फा चान के सहवास से उत्पन्न हुए हैं। चित्र में चारों ओर बहुत-सी चिड़ियां हैं, जिनकी इस कथा में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।



चित्र संख्या (१५) फा लाक फा लाम रिसि छनक के आस्रोम में आते हैं। फा लाम धनुष उठा लेते है, और नांग सीडा से उनका विवाह हो जाता है। छनक पीले वस्त्र पहने अपने आस्रोम में बैठे हैं। **रावण भी विवाह-समारोह में सम्मिलित** हुआ है, चित्र में उसकी आकृति अत्यन्त वीभत्स है। चित्र में नीचे की बायीं ओर यज्ञ की वेदी है।



चित्र संख्या (१६) चित्र में बायीं ओर फा लाक एक घोड़े वाले रथ का सारथित्व कर रहे हैं। फा लाम और नांग सीडा रथ में बैठे हैं। इसी बीच रावण स्वर्ण-मृग भेज देता है। सीडा मृग को पाने की इच्छा प्रकट करती हैं। पीछे की ओर फा लाम घोड़े पर चढ़े मृग को लाने जा रहे हैं।



चित्र संख्या (२०) यह उस चित्र का पूर्व-भाग है। फा लाक और फा लाम मनिकोथ वृक्ष तक पहुंच गये हैं। यहां फा लाम ने गलती से दूषित फल खा लिया था और वे थोड़े समय के लिए वानर बन गये थे। यहां उन्होंने तोतम रिसि की पुत्री नांग फोङ सी, जो कि वानरी बन गयी थी, से विवाह किया, जिससे हनुमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। चित्र में वानर-रूप फा लाम वानरी फोङ सी से भेंट कर रहे हैं।



चित्र संख्या (२३) चित्र में फाली चान की सेना फा लाम की सहायता के लिए जा रही है। फाली चान अकेले अपने दो घोड़ों वाले रथ पर हैं, उनका सारथि अलग घोड़े पर चल रहा है। फा लाक फा लाम आगे दूसरे रथ पर हैं, उनके रथ में भी दो घोड़े हैं। उनका सारथि भी अलग से साथ चल रहा है, उसके हाथ में लाम की पताका है, जिसका रंग पीला है और जिस पर 'फा लाक फा लाम' की सेना लिखा है।

लिया, तो फा लाम ने उनसे पूछा, "आप कौन हैं ?" तब हनुमोन ने सूरिय की आज्ञा बताई, और कहा कि मुझे सूरिय से फा लाम, जिनका शरीर हरितवर्ण का है, को खोजने और उनकी सेवा करने का आदेश मिला है। हनुमोन लाम की सेवा में ले लिये जाते हैं और उनके मित्र बन जाते हैं। चित्र में तीनों को मिलकर सीडा की खोज में जाते दिखाया गया है।

कुछ समय बाद लाम ने हनुमोन को जल लाने के लिए भेजा है। हनुमोन पानी के निकट पहुंचकर देखते हैं कि पानी तो खारा है। उसके स्रोत का अनुसरण करते हुए उन्होंने देखा कि लाल वानर साङ खीप बैठा हुआ रो रहा है और उसके आंसुओं से एक नदी बह निकली है। साङ खीप हनुमोन से अपनी दुःखगाथा कहता है। हनुमोन उसे फा लाम के पास ले आते हैं। फा लाम साङ खीप से उसके भाई से झगड़े में उसकी सहायता करने का वचन देते हैं। इस चित्र के ऊर्ध्वभाग में साङ खीप और फाली के बीच युद्ध दिखाया गया है—उनके रंग क्रमशः लाल और हरे हैं। फलक के बीच में दोनों संघर्ष में भिड़े हुए हैं, नीचे की ओर दो हरे रंग की आकृतियां हैं। लाम फाली का वध कर रहे हैं। इस चित्र के ऊपर की छत उभरे हुए कमल की आकृतियों से भरी पड़ी है। मध्यवर्ती कमल पुष्प विशाल शतदल है, अन्य आकार में छोटे हैं।

थोसोरोथ की मृत्यु

यहां आकर चित्रों की शृंखला टूट जाती है क्योंकि मन्दिर का द्वार बीच में आ गया है। इसके आगे के चित्र सामने वाली दीवार पर भगवान बुद्ध की प्रतिमा के ठीक पीछे बने हुए हैं। यहां से अयुध्या की कथा पुनः आरंभ होती है। राजमहल के अन्दर एक बहुत बड़ा चीनी मिट्टी का कलश रखा है, इसके भीतर थोसोरोथ की अस्थियां हैं।[६]

६. लाओस में अन्त्येष्टि-क्रिया को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। क्योंकि मृत्यु निर्वाण अवस्था में प्रवेश कराती है, इसलिए मृत्यु दुःख का कारण न होकर हर्ष का अवसर है। शुभ तिथि, घड़ी और अवसर देखकर ही अन्त्येष्टि की तैयारी की जाती है। साधारण स्थिति में सात दिन और रात मृतक के शरीर-कलश के निकट जागरण किया जाता है। उच्च परिवारों में यह समय और भी बढ़ जाता

उनकी मृत्यु हो गयी है। सामने के प्रांगण में तीनों रानियों को श्वेत परिधान पहने रोते हुए दिखाया गया है, उनके शरीर भी श्वेत हैं। राजप्रासाद की बाहरी दीवारों के निकट गहरी नीली जमीन पर फा फ्रोत (प्रिय भरत) खड़े हैं। उनके शरीर पर शुद्ध स्वर्ण का कवच है, वे अपनी माता कैकेसी की भर्त्सना और उसका निष्कासन कर रहे हैं, क्योंकि उसने फा लाम को वनवास दिलाया है। चित्र के अधोभाग में फा फ्रोत और फा सतु की सेनाएं तैयार खड़ी हैं। ये दोनों भाई स्वर्ण-रथों पर सवार होकर अपने बड़े भाई लाम की खोज में जा रहे हैं। रास्ते में उन्हें दो रिसि (ऋषि) मिलते हैं, उनसे वे लाम का पता पूछते हैं। उनके पीछे एक और बड़ा रथ है, इसमें चार पहिये और दो घोड़े हैं। एक घोड़े का रंग गहरा बादामी या किशमिशी है, दूसरा नील वर्ण का है। रथ में पांच सारथि हैं। इस रथ में थोसोरोथ की दोनों रानियां जा रही हैं। फा फ्रोत का शरीर यहां नारंगी रंग का है, वे एक चक्र और दो घोड़ों वाले रथ पर यात्रा कर रहे हैं।[७] फा सतु का रंग पीत-बादामी है।

मन्दिर के भित्तिचित्रों का अस्तित्व स्वतन्त्र नहीं है कि उनकी गणना की जा सके। वे सब एक अन्तर्व्यापिनी दृष्टि से एक-दूसरे के साथ ऐसे मिले हुए हैं कि दीवार पर एक आकर्षक सौन्दर्य-परियोजना उत्पन्न करते हैं।

फा फ्रोत और उनके साथियों का समूह फा लाम की खोज में आगे बढ़ता जा रहा है। अन्ततोगत्वा वे खूखान के पास पहुंच गये। खूखान

है। महाराजा सवङ वत्थन के पिता के शव-कलश को एक वर्ष से भी अधिक रखा गया था। अन्त में चिता बनाकर बौद्ध और ऋग्वेद के मन्त्रोच्चार सहित शव को जला दिया जाता है। और मृतक के निर्वाण-प्रवेश के उपलक्ष्य में खुशियां मनायी जाती हैं।

७. भारतीय दर्शन के अनुसार रंग-संयोजना बड़ी अर्थपूर्ण होती है। प्रत्येक रंग का उसके विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है। यहां भरत के शरीर को गेरुए-नारंगी रंग में दिखाकर कलाकार ने उनके हृदय की वैराग्य-दशा की ओर संकेत किया है। इसी प्रकार दोनों रानियों को भारतीय परम्परा के अनुसार विधवा के श्वेत रंगों में दिखाया गया है।

फा लाम का संरक्षक है, इससे पूर्व वह जंगल के इस प्रान्तर में आखेट किया करता था। खूखान ने उनकी परीक्षा की और उनके सदुद्देश्यों को जानकर ही उन्हें आगे जाने की अनुमति दी। इसके बाद वे एक अन्य रिसि से मिले जिन्होंने उन्हें आगे जाने की राह दिखाई। यहां तक कि उस आश्रम के चारों ऋषि, जिनके शरीर श्वेत दिखाए गये हैं[८], फा फ्रोत के जनसमूह के साथ हो लिये। अगले ही चित्र में फा इन स्वर्ग से नीचे उतरते हैं और लाम को सूचना देते हैं कि तुम्हारा भाई सेना लेकर तुम्हें वापस लौटाने हेतु आ रहा है। वह तुमसे अपने स्थान पर राज्य करने के लिए कहेगा। परन्तु यदि तुम उसके साथ चले जाओगे, तो तुम्हारे प्राणों को खतरा होगा, अतएव तुम्हें नहीं जाना चाहिए। फा इन ने सोचा था कि थोसोरोथ की दूसरी पत्नी फा लाम की हत्या करने की कोशिश करेगी। चित्र के दूसरी ओर से लाम, लाक और सीडा फा फ्रोत के साथ आते हुए जनसमूह को देख रहे हैं। फिर लाम और फ्रोत का मिलन होता है। चित्र में तीन स्त्रियां हैं, उनमें से एक लाम की माता विलाप कर रही हैं क्योंकि लाम वापस लौट चलने के लिये राज़ी नहीं हैं। वाकी दोनों कैकेसी और समुत्थसा (समुद्रजा अथवा सुमित्रा) हैं। इसके नीचे एक बड़ा चित्र है जिसमें समस्त संसार को लाम के न लौटने के कारण विलाप करते हुए दिखाया गया है। अन्यत्र फ्रोत अपने रथ पर चढ़े लौट रहे हैं, उनके साथ उसी रथ पर लाम की माता कौसल्या है। शेष दोनों माताएं दूसरे रथ पर पीछे आ रही हैं। हमारा मार्गदर्शक हमसे कई बार रानियों की इस पूर्वापर व्यवस्था को देखने का अनुरोध करता है। वह फा फ्रोत की न्यायप्रियता, भ्रातृ-भक्ति और ज्येष्ठा माता के प्रति आदरभावना से ओत-प्रोत है। उसे हर्ष है कि अन्याय करने वाली कैकेसी को उसका उचित स्थान प्रदान किया गया

८. लाओस, कम्बोदिया और थाइलैण्ड में जहां बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया गया था, वहां बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्र नारंगी-पीले होते हैं। परन्तु बौद्ध धर्म के आ जाने से यहां ब्राह्मण-हिन्दू धर्म मिटा नहीं। अनेक हर्षदायक अवसरों पर धार्मिक कृत्य वैदिक रीति से ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा कराये जाते हैं। इनकी पोशाक श्वेत होती है। इन्दोनीसिया के जावा तथा बाली द्वीपों में भी हिन्दू पुरोहित श्वेत परिधान धारण करते हैं।

है। फा फ्रोत से भेंट के बाद, फा लाक, फा लाम और सीडा उस स्थान को छोड़ देने का संकल्प करते हैं। उनका विचार है कि यह स्थान अब सुरक्षित नहीं रहा; बहुत-से लोग उसे जान गये हैं। मार्ग में एक नदी है, नदी के किनारे खड़े तीनों विचार कर रहे हैं कि उसे किस प्रकार पार किया जाय। चित्र के ऊर्ध्व भाग में फा इन दिखाई देते हैं, उनके हाथ में एक नाव है उन्हें देने के लिये; नाव खाली है। नीचे के चित्रों में तीनों नाव में बैठकर नदी पार कर रहे हैं।

फन्या खोन की कथा

नदी पार करते ही वे तीनों एक सुन्दर उपवन में पहुंच जाते हैं। यह उपवन यक्षों के राजा फन्या खोन का है। फा लाक उपवन में फल एकत्रित करने लगते हैं, फन्या खोन के आदमी उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं। फा लाक उन सब का वध कर देते हैं। चित्र में वे सब इधर-उधर मृत पड़े दिखाई देते हैं। एकाध जो बच सके हैं, जाकर मामले की सूचना फन्या खोन को दे देते हैं।

फन्या खोन सुनते ही, फा लाम के पास आया। नांग सीडा को देखकर वह उनपर मोहित हो गया। चित्र में फन्या खोन उछलकर सीडा के ऊपर झपट रहा है; लाम सीडा की रक्षा के लिये उससे भी ऊंचे उठते जाते हैं। चित्र में ऐसा प्रतीत होता है मानो वे हाथों में धनुष लिये आकाश से उस पर आक्रमण कर रहे हों। फा लाम का फन्या खोन से युद्ध होता है। बचाव की कोई दूसरी राह न देखकर, फन्या खोन निकट पड़े हुए एक बहुत बड़े पत्थर को उठाकर उन्हें मारने का उपक्रम करता है। लाम अपने बाण से उसका सिर काट कर सीडा की रक्षा करते हैं। वनवास के दृश्यों में भी लाम, लाक और सीडा को सम्पूर्ण राजसी वेश-भूषा में दिखाया गया है। फन्या खोन की कथाका यह चित्र वर्षा के पानी के कारण बहुत नष्ट हो गया है।

थोरफ और थोरफी का युद्ध

सबसे ऊंची पंक्ति पर थोरफ और थोरफी के चित्र हैं। थोरफ फा इन का अंगरक्षक था। शापित होने के बाद वह थोरफ नाम का महिष

हुआ। भैंसे के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेने के उपरान्त, थोरफ को बताया गया कि उससे उत्पन्न कोई भी नर-संतान उसका संहार करेगी। अतः वह अपनी सभी नर-सन्तानों की हत्या कर दिया करता था। अन्त में उसकी पत्नी को उसके कृत्य का पता चल गया। अगली बार जब वह गर्भवती हुई तो उसने एक गोपनीय स्थान पर संतान-प्रसव करने का निश्चय किया। इस प्रकार थोरफी नामक कृष्णवर्ण महिष का जन्म और रक्षा हुई। थोरफी जब पूर्ण युवा हुआ तो उसने युद्ध में अपने पिता का वध कर दिया। इसके बाद वह बहुत उत्पात करने लगा और फा इन के महल तक पहुंच गया। फा इन ने उसे फाली से शक्ति-परीक्षण का सुझाव दिया। अतः वह खिटकिन पहुंच गया। फाली ने इस महिष से युद्ध किया, परन्तु विजय न पा सका। जब दोनों समान-पराक्रमी सिद्ध हुए तो फाली ने थोरफी को द्वन्द्वयुद्ध के लिए आह्वान किया। इस युद्ध के लिए गुफा में जाने के पहले, फाली ने अपने भाई साङ खीप से कहा था, यदि तुम्हें गुफा से हलके रंग का पतला रक्त बाहर आता दिखाई पड़े तो समझना कि यह मेरा रक्त है; परन्तु रक्त यदि गाढ़ा, मटमैला और निकलते ही जमने वाला हो, तब वह महिष का रक्त होगा, और तब उसका वध किया जा चुका होगा। इतना कहने के बाद फाली ने थोरफी का वध कर दिया; उसी समय वर्षा हो गयी और पानी के कारण रक्त का रंग हलका और पतला हो गया। अपने भाई की मृत्यु हुई जानकर साङ खीप ने फाली द्वारा दिये गये आदेश के अनुसार गुफा के द्वार को एक विशाल प्रस्तर-खण्ड से बन्द कर दिया, जिससे कि थोरफी बाहर न निकल सके।

यह चित्र दो भागों में बना है, एक ओर खिटकिन की दृश्यावली है, दूसरी ओर साङखीप गुफा को बन्द करने हेतु राजधानी से निकल रहा है। गुफा के बन्द हो जाने पर फाली ने सोचा कि साङ खीप ने स्वयं राजा बनने के लोभ में गुफा का द्वार बन्द कर दिया है। क्रुद्ध होकर उसने थोरफी के सिर की अस्थियों से पत्थर को ठेलकर गुफा को खोल लिया। वास्तव में उस गुफा में एक थेवता (देवता) निवास करता था। उसी ने फाली से कहा था कि थोरफी के सिर से यदि ठेला जाय तो गुफा खुल सकती है। खिटकिन में लौटकर फाली ने साङ खीप

से कहा कि तुमने स्वयं राजा बनने के लोभ में मेरे साथ अन्याय किया। साङ खीप और फाली एक-दूसरे से भिड़ जाते हैं; साङ खीप हार जाता है। फा लाम से भेंट होने पर वह यही कहानी उन्हें सुनाता है।

चित्रों के निकट, बुद्ध-प्रतिमा और स्तूपों पर जो पुष्प अर्पित किये गये हैं, उन्हें विभिन्न स्तूपों के आकार में बड़ी सुन्दरता से सजाया गया है।

अगले दो चित्रों में अयुथ्या के दृश्य हैं। अयुथ्या की राजधानी और कैकेसी के पिता की नगरी दोनों को साथ-साथ एक-दूसरे के पार्श्व में दिखाया है। फा फ्रोत और फा सत्रु दोनों, जब फा लाम को अयुथ्या से निर्वासित किया गया, उस समय अपने मातामह के घर पर थे। इस चित्र में फा फ्रोत को अयुथ्या आकर वहां का राजा बनने के लिए निमन्त्रित किया जा रहा है।

भगवान बुद्ध की प्रतिमा के पीछे वाली दीवार के शीर्ष भाग पर एक मनोहारी उपवन है जिसके भीतर अनेक प्रकार के पशु विहार कर रहे हैं। सुन्दर कोमलवर्ण हाथी हैं जिनका रंग हलके आरक्त मौक्तिक से लेकर बिलकुल श्वेत है।[१] इसी वन के भीतर से फा फ्रोत अयुथ्या लौट रहे हैं।

इससे नीचे के चित्र में अयुथ्या के राज-कर्मचारियों की एक सभा हो रही है, जिसमें निश्चय किया जायगा कि किसे राजा बनाया जाय। निर्णय फा फ्रोत के पक्ष में गया, क्योंकि राजा दशरथ अपनी पत्नी कैकेसी को प्रसन्न करने के लिए कृतसंकल्प थे। सभा के निर्णय के उपरान्त थोसोरोथ की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के दृश्य को अलग से चित्रित किया गया है।

बुद्ध प्रतिमा के दाहिनी ओर की दीवार पर लाम, सीडा और लाक तीनों नाव पर चढ़े नदी को पार कर रहे हैं, उनके समक्ष जब अयुथ्या के प्राचीर बन्द कर दिये गये तो वे पुनः वन की ओर लौट पड़े। यह नदी उनके अयुथ्या से वन जाते समय मार्ग में पड़ती थी। निश्चय

१. लाओस और बर्मा के वनों में हलके गुलाबी और सफेद रंग के हाथी पाये जाते हैं। इनको रखना बहुत व्ययसाध्य है।

ही यह नदी गंगा है और यह घटना निषादराज से भेंट के समय की है। सरयू नदी का लाव-नाम सरफ़ है, परन्तु यह नदी सरफ़ नहीं है।

इस प्रकार पवित्र वाट पऽ केऽ में फाली-साङ खीप युद्ध के साथ रामायण कथा का अन्त होता है और दर्शक श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को नाव पर सवार पवित्र गंगा नदी को पार करते देखते हैं। श्रीराम ने राजसी वैभव का परित्याग कर कर्त्तव्य के कठिन पथ पर सपरिवार पग बढ़ाया है। हम भी इसी प्रेरणा और विश्वास को हृदय में भरकर महान् रामायण-कथा के नायकों को मन ही मन प्रणाम करते हुए इस श्रेष्ठ मन्दिर से विदा लेते हैं।

परिशिष्ट

राजधानी लुआङ प्रबाङ में एक राजकीय पाली भाषा महाविद्यालय है। वाट पऽ केऽ उसी के पार्श्व में एक लघु पर्वत-शिखर पर निर्मित है। चारों ओर सुहावना दृश्य है। मन्दिर के भित्तिचित्रों को तैल रंगों से आंका गया है, उनकी शैली थाइ-कला से मिलती है। हनुमोन का चित्रण यथार्थ थाइ-शैली में किया गया है। कथा का आरंभ उस स्थल से होता है, जहां सिउ हान अपनी जिह्वा से लंग्का की रक्षा कर रहा है। कथा की समाप्ति फाली-साङ खीप युद्ध से होती है। इस प्रकार अपने घटनाक्रम और उसके महत्त्व में भी लुआङ प्रबाङ की रामकथा थाइ-रामायण का अनुसरण करती है। थाइ और लाव-जाति के समान भाषा और समान सांस्कृतिक परिवेश के विषय में पहले ही संकेत किया जा चुका है। चित्रों में लाव-जाति के थाइ-जाति से अधिक संवेदनशील और करुणार्द्र होने का और उनकी अपनी शैली की तर्क-प्रवणता का पर्याप्त परिचय मिलता है। वे फाली और कैकेयी द्वारा किये गये अनैतिक कार्यों के लिए भी अपने ढंग के विलक्षण तर्क ढूंढ़ लेते हैं। अपने देश लाओस की राजनीतिक परम्पराओं के प्रति उनकी दृढ़ आस्था भी श्रीराम के निर्वासन-प्रसंग पर विचार करने हेतु बुलाई गयी मंत्रिपरिषद की बैठक के चित्रांकन से स्पष्ट हो जाती है।

वाट पऽ केऽ का निर्माण-काल

वाट पऽ केऽ का निर्माण-काल १८०३ ईस्वी में हुआ, और भित्ति-चित्र भी उसी समय कलाकार नाइ खियेन द्वारा बनाये गये। ये अब लगभग २०० वर्ष पुराने हो गये हैं। चित्रों के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कलाकार ने किसी पूर्वनिर्धारित क्रम अथवा योजना के अनुसार चित्रों के अंकन नहीं किया। उसके अवचेतन में सम्पूर्ण कथा उपस्थित थी, समय-समय पर जो-जो घटनाएं उभरती गयीं, उन्हीं का चित्रांकन उसने किया। यही कारण है कि बहुत-सी घटनाओं को एक से अधिक बार आंका गया है, और कथा को इस मंदिर में पूरा नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप कथा की बची हुई घटनाओं को, जैसे राम-रावण युद्ध आदि को वाट विसुन और वाट माइ जैसे मंदिरों में चित्रित किया गया जो राजमहल के अंतर्गत न हो कर लाओस के धर्म-गुरु संघराजा के अधिकार-क्षेत्र में हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि संघराजा भी लाओस में धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के प्रति पूर्णरूप से समर्पित हैं।

वियेनत्यान की रामायण-कथा

जैसा कि महर्षि वाल्मीकि के देश में हुआ, और उनकी अमर-कथा रामायण को लेकर देश के विभिन्न प्रांतरों ने उसके अपने-अपने संस्करण तैयार किये, उसी प्रकार लाओस जैसे छोटे-से देश में भी विभिन्न प्रांतरों ने रामायण-कथा के अपने लोकरंजित स्थानीय प्रारूप बनाये। पिछले अध्याय में राजकीय राजधानी लुआङ प्रबाङ के मंदिरों में वर्णित कथा का विवरण दिया गया है। लाओस की प्रशासकीय राजधानी वियेनत्यान में भी एक मंदिर की भीतरी दीवारों पर रामायण-कथा अंकित है। यह कथा लुआङ प्रबाङ की कहानी से कुछ भिन्न है।

वियेनत्यान के वाट ऊप मुओङ की रामायण-कथा

काफी पूछताछ करने पर हमें वियेनत्यान के वाट ऊप मुओङ का पता चला। लाओस के प्रख्यात इतिहासकार महाशील ने हमें इसकी सूचना दी और वे ही लगातार कई दिनों तक हमारे साथ रहकर इस मंदिर के चित्रों के अध्ययन में हमारी सहायता करते रहे।

वाट ऊप मुओङ की भीतरी दीवारों पर इकतीस चित्र हैं। ये हलके जलरंगों में बनाये गये हैं, जो कि बहुत स्थायी नहीं हैं। इनमें 'फा लाक, फा लाम' की कथा चित्रित है। 'ऊप मुओङ' का अर्थ है 'सुरंग' अथवा 'भूगर्भशाला'। हम जब इन चित्रों को देखने गये, उस समय तक १३ दिसम्बर, १९६० को प्रारंभ हुआ लाओस का गृहयुद्ध चल रहा था। छोटा-सा वियेनत्यान नगर युद्ध की विभीषिका से आक्रांत था। सड़कों और किनारों की जल-प्रवाहिकाएं मृत सैनिकों के शवों से पटी पड़ी थीं; दैनिक जीवन, व्यापार का कारोबार अस्तव्यस्त था। मेकांग नदी के दूसरे तट से वस्तुएं आनी बंद हो गयी थीं। बौद्ध भिक्षुओं ने अपने विहारों को छोड़कर मंदिरों के गर्भगृहों में शरण ले ली थी। फलतः

जब हम इस मंदिर में पहुंचे तो हमने देखा कि उसका लगभग ६० मीटर लम्बा और ५.५० मीटर चौड़ा केन्द्रीय कक्ष शरणार्थी भिक्षुओं का निवास-स्थान बना हुआ है। भिक्षुओं के वस्त्र तथा अन्य सामग्री, उनके सोने की शीतलपाटियां, पात्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे। इसे देखकर हमारे मन में मंदिर और उसके चित्रों की सुरक्षा के संबंध में गंभीर चिंता उत्पन्न हो गयी। हमें भय था कि युद्ध की स्थिति यदि अधिक बिगड़ी तो साधारण लोग भी मंदिरों में जाकर शरण लेंगे और मंदिरों की दशा पवित्र पूजास्थल से गिरकर साधारण निवास या धर्मशाला की-सी हो जायेगी, और फिर इन अत्यन्त मूल्यवान चित्रों का सुरक्षित रहना संभव नहीं रहेगा। अतएव हमने अविलम्ब चित्रों का विवरण जान लेने तथा उनके छायांकन का काम हाथ में लिया। सितम्बर १९६१ का पूरा महीना-भर हम इन चित्रों को देखते रहे थे।

पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है कि 'फा लाक, फा लाम' की पाण्डुलिपि की अनुकृति १९३३-३५ में तैयार की गयी, ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग उसी समय वाट ऊप मुओङ् के चित्रों का भी आकलन किया गया। १९६१ में ये लगभग २५ वर्ष पुराने जान पड़ते थे। इन चित्रों में वर्णित कथा लुआङ प्रबाङ में चित्रित कथा से पर्याप्त भिन्न है। चित्रों के वर्णन की भाषा को हमने जानबूझकर अपने मार्ग-दर्शक महाशील की स्वप्रयुक्त विशेप मिठास और कोमल लाव-मनोभावना-मिश्रित शब्दावली के निकट रखने का यथासंभव प्रयास किया है जिससे कि लाव-भाषा की मधुर हृदयग्राही शैली और रसात्मकता तथा भारतीय मानस पर उसके द्वारा होने वाले विचित्र आनन्ददायक प्रभाव को हम पाठकों तक पहुंचा सकें।

चित्र संख्या (१)

पहले ही चित्र में इंथपत्थनखोन (इन्द्रप्रस्थनगर) का दृश्य है। चाओ विरुनहक अपने महल में बैठे हैं। विरुनहक के बड़े भाई थट्टरथ (दशरथ) वाराणसी के राजा हैं, वे पास में ही अपनी पत्नी से वार्त्तालाप करते हुए बैठे हैं। नीचे की ओर बाज़ार का दृश्य है। विरुनहक संतानहीन हैं, वे अपनी पत्नी से कहते हैं कि वह पात्थना (प्रार्थना)

करे जिससे उन्हें शिशु की प्राप्ति हो सके।

इन चित्रों की एक विशेषता है। प्रत्येक चित्र अपने-आप में अलग और स्वतंत्र है और उसके नीचे उसका विवरण लाव-भाषा में दिया गया है।

चित्र संख्या (२)

पात्थना के परिणामस्वरूप विरुनहक के एक पुत्र उत्पन्न होता है। चित्र में लुम लू दिखाई दे रहा है, यही बालक रावण है। उसका शरीर विकृत है, उसकी भुजाएं और टांगें नहीं हैं। उसका जन्म लाव-ग्रामीण परिवेश में किसान-परिवार में हुआ है। चित्र में लाओस का साधारण ग्रामीण दृश्य है, हल में जुता हुआ भैंसा और खेत। लाओस में भैंसा खेती में काम आने वाला मुख्य पशु है। चारों ओर शांति व्याप्त है। लुम लू वास्तव में महा फोम (महाब्रह्मा) का अपूर्ण अवतार है। महाब्रह्मा के रूप में उसे बहुत अभिमान हो गया था, उसने सोचा था कि मेरा शरीर सर्वांग-सम्पूर्ण है। अतएव पृथ्वी पर जन्म लेने से पूर्व जब देवों ने उसे सलाह दी कि वह उन्हींके समान अपने शरीर को भी ढलवा ले तो उसने उनका अपमान कर दिया। वह तो जैसा था उसी प्रकार पृथ्वी पर आना चाहता था। अतएव उसे विकलांग और विकृत शरीर लेकर आना पड़ा।

चित्र में लुमलू के चारों ओर लाओस की प्राकृतिक-ग्रामीण दृश्यावली, अन्न, फल, वृक्षादि दिखाई देते हैं।

चित्र संख्या (३)

स्वर्ग से फा इन (देव इन्द्र) अपने श्वेत घोड़े पर चढ़कर नीचे उतरे हैं। वे खेत में काम करते किसान से कहते हैं कि इस विकृतांग बालक को हमें दे दो। खेत में दो बड़े-बड़े काले पक्षी दिखाये गये हैं, इनकी आकृति कौओं जैसी है। यही विकृतांग बालक रावण के रूप में जन्म लेगा, कौए अनिष्ट का सूचक हैं।[1]

१. लाओस में कौए नहीं होते। उनका चित्रण भारतीय कथानकों के आधार पर किया गया है। इसलिए उनकी आकृति सही नहीं है।

चित्र संख्या (४)

स्वर्ग में इन्द्र का महल। महल का स्थापत्य अत्यंत सुंदर है और लाओस के राजप्रासाद के शिल्प से मिलता-जुलता है। इन्द्र का अश्व बाहर बंधा है, इन्द्र तथा अन्य देवगण मिलकर बालक का पुर्ननिमाण कर रहे हैं।

चित्र संख्या (५)

पुनः फा इन का प्रासाद। लुम लू अपने नये ढले सांचे का अवलोकन कर रहा है, जो कि स्वयं फा इन के समान सुंदर और नयनाभिराम है। अपने ही रूप पर मोहित और गर्वित लुम लू फा इन की पत्नी नांग सुसादा (सुजाता) के पास अपना प्रेम प्रदर्शित करने जाता है। पतिव्रता सुसादा को प्रातःकाल होने तक यह ज्ञान नहीं हो पाता कि वह पर-पुरुष के साथ थी, क्योंकि उसके असली पति फा इन रात्रि में केवल एक बार उसके समीप आते हैं। परंतु इस रात्रि वे दूसरी बार आये। इस बात से उसे पता चल गया कि रात्रि में आने वाला पहला पुरुष उसका पति नहीं था, और इस प्रकार उसे अज्ञान में व्यभिचार का दोषी बनाया गया है। दुःखी होकर वह अपने पति फा इन के पास जाती है और उनसे अपने पृथ्वी पर भेजे जाने की आज्ञा मांगती है, जिससे कि वह अपने अपराध के लिए दण्डित हो सके।

यहां इन्द्र की पत्नी सुजाता का आचरण लाव-चरित्र और सदाचार का प्रतीक है। सामान्य लाव-नैतिकता के अर्थ हैं अपनी भूलों, दुर्बलताओं के लिए स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने की सामर्थ्य।

चित्र संख्या (६)

फा इन और उनकी पत्नी पारिजात वृक्ष की छाया में अपने प्रासाद के उपवन में बैठे हैं। उनके पीछे उनके सेवक-परिचारक खड़े हैं। इन सबके बैठने का क्रम अत्यन्त कलात्मक है, मानों पक्षी के दो फैले हुए पंख हों और दोनों पंखों के मिलन स्थल अथवा बीच में फा इन और सुसादा बैठे हैं। फिर पंख की फैलान के अनुसार क्रम से

सेवकगण बैठे हैं। सम्पूर्ण व्यवस्था लाओस की अनुशासनात्मक सेवक-स्वामी संबन्धों की व्याख्या उपस्थित करती है। सुसादा पूर्ण शिष्टाचार का पालन करते हुए मृत्यु लोक में जाने की अनुमति मांग रही है। उन लोगों के सम्मुख नील वर्ण का एक अति सुन्दर जल-प्रवाह है, जिसमें कई रंग के फूल खिले हैं। कुछ ऊंचाई पर इन्द्र कमलासन पर बैठे हैं।

चित्र संख्या (७)

यह लंका का दृश्य है। लुम लू का जन्म हाफन सुआन के रूप में हुआ है। (हाफन—रावण, सुआन—असुर) वह एक शक्तिशाली असुर है। इन्द्र की पत्नी ने नांग सीडा के रूप में जन्म लिया है; वे रावण की पुत्री हैं। चित्र में नांग सीडा एक कोने से हाफन सुआन के कुटुम्ब में आती हुई दिखाई देती हैं। हाफन की पुत्री के रूप में जब वे जन्मीं, तब दैवज्ञों ने भविष्यवाणी की कि बालिका के लक्षण शुभ नहीं हैं, और वह उनके लिए क्लेशकारी होगी। इससे पिता रुष्ट हो गया। फिर एक दिन जब वह बच्ची ही थी, और अपने पिता के निकट थी, तो उसने पिता की ओर चाकू के फलक से इंगित किया और उसके शरीर का एक भाग काट डाला। तब दैवज्ञों को फिर बुलाया गया और उनसे इस घटना का अर्थ पूछा गया। उन्होंने फिर बतलाया कि लड़की किसी काम की नहीं है। चित्र में हाफन अपनी पत्नी नांग मोन्थो या मोन्दो (देखो मंदोदरी) से परामर्श कर रहा है। मोन्थो के विषय में एक और कथा प्रचलित है। एक मुनि ने एक मेंढक को लेकर अपनी चमत्कारी शक्ति से उसे एक रूपवती स्त्री में परिवर्तित कर दिया था।[२]

चित्र संख्या (८)

इस चित्र में हाफन अपने उद्यान की बाहरी दीवारों पर बैठा है,

२. आन्ध्र प्रदेश की कूचिपूडि नाट्य-कथा 'मण्डूकशब्दम्' में भी मन्दोदरी का जन्म इसी प्रकार होता है।

उसके हाथों में उसकी बेटी सीडा है, जिसे वह बहुत दूर तक एक सरोवर में फेंक रहा है। यह सरोवर सुदूर हिमालय पर्वत के घने जंगलों के बीच है। हमारे मार्गदर्शक महाशील के मतानुसार देव इन्द्र की पत्नी का शील हरण करने के पश्चात्, लुम लू तो शक्तिशाली हाफन के रूप में जन्मा, परन्तु जब इन्द्रपत्नी उसके घर में उसकी पुत्री बनकर उत्पन्न हुई तब वह उन्हें स्मरण न रख सका।

चित्र संख्या (९)

नांग सीडा जंगल में फेंक दीं जाती है। यह उनका भाग्य था कि वे एक सरोवर में जाकर गिरीं। छनक (जनक) नाम के एक रिसि जब पुष्प-चयन के लिये आये तो उन्होंने सीडा को देखा। वे उन्हें अपनी छोटी-सी उटज के भीतर ले गये, जहां उन्होंने उसे युवा हो जाने तक बड़ा किया। जब सीडा विवाह-योग्य हुई, तो रिसि ने घोषणा की कि जो कोई भी मेरी पुत्री से विवाह करने का इच्छुक हो, उसे इस अति भारी धनुष को उठाना होगा और जो धनुष को उठा लेगा वही उससे विवाह करेगा। चित्र में रिसि का घर दिखाई देता है; रिसि युवती सीडा से वार्त्तालाप कर रहे हैं।

चित्र संख्या (१०)

नांग सीडा के लिए अब एक अलग घर बनाया गया है जो केवल एक खम्भे पर खड़ा है। एक खम्भे वाला घर एक पुरातन कथा के अनुसार बनाया गया है। एक राजा था जिसके एक अति सुन्दरी कन्या थी। वह नहीं चाहता था कि कोई उसे छेड़े या परेशान करे। इसलिए उसने एक बड़े ऊंचे स्तम्भ के ऊपर उसके लिए घर बनवाया। संभवतः यह कथा सत्य नहीं है, परन्तु यह लाओस के लोक-साहित्य का एक अंग है।

चित्र में इतनी ऊंचाई पर अपने घर में सीता को अकेली बैठा देखकर मन में अनेक भाव उठते हैं, एक अजीब-सी करुणा उपजती है। उसकी ऊंची स्थिति, ऊंचा कुल, जीवन में उसके दुर्भाग्य, उसकी एकाकी नियति सब केवल इस एक मकान की विधा से आंखों के

सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

चित्र संख्या (११)

यहां वाराणसी नोखोन (वाराणसी नगर) का चित्र है। श्रीराम वाराणसी के शासक थे। इस चित्र में फा लाक और फा लाम अपने पिता के निकट बैठे हैं, वे उनसे जाकर धनुष उठाने की अनुमति मांग रहे हैं। उनके पिता थट्टरथ हैं। वे केवल दो भाई थे, जिनमें फा लाम बड़े थे।

अगले चित्र संख्या (१२) में दोनों भाई घोड़े पर यात्रा कर रहे हैं। वे दोनों एक ही घोड़े पर सवार हैं। इस प्रकार फा लाक और फा लाम मिलकर दो शरीर एक प्राण, एक व्यक्तित्व बन गये हैं। कितनी सरल और हृदयग्राही विधि से लाव-कलाकार ने राम-लक्ष्मण के दो होकर भी एक होने के युग्मैक्य को साकार कर दिया है!

चित्र संख्या (१३)

यहां एक नयी घटना आरंभ होती है। एक रिसि थे, जिनका नाम तोतम (गौतम) था। उनकी दाढ़ी इतनी बढ़ गयी थी कि उसके अन्दर दो छोटी-छोटी नुक चोक (गौरैयों) ने अपना घोंसला बना लिया था। एक दिन चिड़ियों का वह जोड़ा आपस में लड़ने लगा। पत्नी बोली, "कल रात तुम एक परायी लड़की का भोग करने कैसे चले गये?" और पति ने उत्तर दिया, "नहीं, यह सत्य नहीं है यदि सब कुछ असत्य होता और सत्य न होता, ओर यदि मैं वैसा होता जैसा तुमने कहा कि मैं था, तब तो मैं गंभीरतापूर्वक गलत रास्ते पर होता जिस प्रकार ये हमारे आश्रयदाता रिसि हैं।"

रिसि ने जब यह वार्त्तालाप सुना तो उन्होंने नुक चोकों से पूछा, "मैं क्यों गलत रास्ते पर होऊंगा, जैसा तुमने अभी कहा कि मैं गलती कर रहा हूं?" तब पति-पक्षी ने उत्तर दिया, "क्योंकि रिसि की कोई सन्तान नहीं है, इसलिए किसी प्रकार तो वे गलती पर हैं।" यह सुन-

कर रिसि को क्रोध नहीं आया, इसके विपरीत वे किसी न किसी प्रकार अपने मनोरथों में परिवर्तन करके प्रसन्न ही हुए, और वे पत्नी प्राप्त करने के लिए साधन खोजने लगे। अंततोगत्वा उन्होंने एक उपाय खोज ही लिया; उनके मन में विचार आया कि वे स्वयं अपनी पत्नी का निर्माण कर सकते हैं। उन्होंने अपने शरीर को रगड़ा, और उससे जो मैल छूटा उसे एकत्र करके उन्होंने अपनी चमत्कारिक शक्ति से अपने लिये पत्नी की रचना की। उनकी पत्नी का नाम हुआ काय सी। लाव-भाषा में 'काय' अथवा 'काइ' के अर्थ हैं मध्य, 'सी' के अर्थ हैं सौंदर्य। संस्कृत में यह शब्द है 'काय श्री' जिसके अर्थ हैं काया अथवा शरीर से निर्मित सुन्दरी।

एक दिन जब रिसि अपने घर में उपस्थित नहीं थे, तो फ्रा अथित (प्रिय आदित्य, अर्थात् सूर्यदेवता) नीचे उतर आये और उन्होंने काय सी से सहवास किया। अंत में काय सी ने एक पुत्र लुक साइ प्रसव किया, बाद में उसका नाम सुक्रीप (सुग्रीव) हुआ। लाव-मान्यता के अनुसार सुक्रीप वानर नहीं है।

एक बार फिर काय सी को वैसा ही अनुभव हुआ, इस बार उनसे फा चान (प्रिय चंद्र अर्थात् चंद्रमा) सहवास करने आये थे। और इस भांति उनका दूसरा बेटा फाली चान, जो वानर नहीं था, उत्पन्न हुआ। यही फाली चान सुक्रीप के भाई बाली हैं। परंतु इन दोनों बालकों के अतिरिक्त काय सी की एक और संतान थी, पहले जन्मी फोङ सी (प्रियश्री)। वह रिसि से उत्पन्न, उनकी असली संतान थी। अपने पिता की अनुपस्थिति में उसने देख लिया था कि दो पुरुष फ्रा अथित और फ्रा चान उसकी माता के पास आये थे।

इस चित्र संख्या (१३) में रिसि अपने शरीर के मैल से अपनी पत्नी का निर्माण कर रहे हैं। उनके सम्मुख सुंदर कारीगरी से सुशोभित चांदी का एक पात्र रखा है, जिसमें पुष्प, मोमदीप तथा लाव-धार्मिक अनुष्टान की अन्य सामग्री रखी हुई है। धूपबत्तियां जल रही हैं। दोनों लड़कों के बड़े हो जाने तक रिसि का ध्यान इस ओर नहीं गया था कि ये मेरे पुत्र नहीं हैं। जब तीनों बालक बड़े हो गये, और रिसि ने लड़कों की ओर ध्यान कुछ अधिक ही दिया, तब उनके इस व्यवहार से

कन्या रुष्ट हो गयी। तब एक दिन उससे नहीं रहा गया, और उसने पिता को बता दिया कि दोनों लड़के परिवार के असली सदस्य नहीं है। पिता इसका विश्वास न कर सके। यहां तक कि एक दिन वे उदास हो गये, क्रुद्ध नहीं हुए।[३] फिर भी वे सत्य के दर्शन तो करना ही चाहते थे, इसलिए वे तप और ध्यान करने लगे। उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की और कहा कि वे तीनों बच्चों को नदी में फेंक देंगे, और यदि वे मेरे बालक नहीं हैं तो नदी के भीतर ही उनकी मृत्यु हो जानी चाहिए। और यदि वे वास्तव में उनकी संतान हैं तो ईश्वर उनकी सहायता करे और वे सही-सलामत अपने पिता के पास लौट आयें। चित्र में तीनों बालकों को नदी में मछलियों और केकड़ों के साथ फिका हुआ दिखाया गया है।

रिसि के आश्रम के चारों ओर चिड़ियां और हरे-भरे वृक्ष हैं। जल परीक्षा में दोनों भाई अनुत्तीर्ण रहे, केवल बालिका ही वापस लौट सकी। चित्र में प्रकृति का बारीकी से चित्रण किया गया है।

चित्र संख्या (१४)

भाग्य से दोनों लड़के तैरकर नदी से बाहर निकल आये, वे कुक्कुटवदी (कुक्कुटवती) नामक नगरी में पहुंच गये। संयोग से कुक्कुटवदी के शासक की मृत्यु हो गयी थी, इसलिए उन्होंने बड़े भाई को शासन करने के लिए निमंत्रित किया। इस चित्र में शासक की मृत्यु का दृश्य दिखाया गया है। उनके शरीर को पक्की चीनी मिट्टी के एक कलश में रखा गया है। कलश के दाहिनी ओर चार सशस्त्र सैनिक खड़े हैं। सैनिकों के अधोवस्त्र भारतीय परिधान 'धोती' की शैली के हैं। थाइ-लाव भाषा में इसे आदरपूर्वक 'सम्पोत' कहा जाता है। उनके शिरों के आवेष्टन भी भारतीय हैं। सैनिकों के आगे उनका सेनानायक है, वह पानी से बाहर आते नवयुवकों से अपने देश का शासक पद स्वीकार करने का अनुरोध कर रहा है।

३. यह एक विशेष लाव-भंगिमा है, क्योंकि सरस-हृदय लावों के लिए वास्तव में क्रोध करना बहुत कठिन है।

चित्र संख्या (१५)

यह चित्र एक बड़े चित्र के भीतर बना हुआ है। यहां भैंसों का एक समूह दिखाई दे रहा है। इस यूथ का नेता बहुत बलवान है। उसका नाम थोरफ (दुन्दुभि) है। वह अपनी समस्त पुरुष-संतानों को मार डालता है, केवल स्त्री-संतान ही जीवित रह पाती हैं। एक दिन माता भैंस ने पुरुष-शिशु को प्रसव किया। प्रसव के लिए वह एक गुफा के अन्दर चली गयी थी। इस चाल से उसने अपनी पुरुष-संतान की रक्षा की। उसका नाम उसने थोरफी रखा। अब थोरफी इतना बलवान् हो गया कि वह अपने पिता से युद्ध कर सकता था। उसने उससे युद्ध किया और उसे मार डाला। थोरफ़ी की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि वह सब भैंसों पर शासन करने लगा। एक दिन वह पास के कुक्कुटवदी नगर के धान के खेतों में चला गया, और सब धान खा डाला, ऊपर से उसने धान के खेतों को खूब रौंदा। ऐसा उसने एक बार नहीं, अनेक बार किया। नगर के लोगों ने जब यह कृत्य देखा तो वे नगर-प्रमुख के पास गये, और मामले की सूचना दोनों भाइयों को दी। सूचना पाकर दोनों भाइयों ने पशु का वध करना उचित समझा।

दीवार पर पिता और पुत्र थोरफ और थोरफी के बीच युद्ध दिखाया गया है। बायीं ओर एक छोटे भैंसे का चित्र है, यह थोरफी है जो अखाड़े में पिता से लड़ने से पहले कसरत कर रहा है। उसी की सीध में कुछ दूर पर दो बड़े भैंसे दिखाई दे रहे हैं; दोनों के सींग आपस में गुत्थम-गुत्था हैं। मुख्य चित्र में एक पुष्ट और सुडौल भैंसा, थोरफी, सुक्रीप से युद्ध कर रहा है। सुक्रीप और थोरफी पहले खुले में लड़ रहे थे, पर वह जगह काफी न थी इसलिए वे गुफा के अन्दर चले गये। गुफा के भीतरी भाग का अंकन बड़ी सुन्दरता से किया गया है, इसकी पृष्ठ-भूमि चमकीली श्वेत है। सुक्रीप के हाथ में एक बहुत बड़ी तलवार है, उसके बायें हाथ में रस्सी का एक फंदा है। सुक्रीप ने अपने भाई फाली चान से गुफा के बाहर रहकर युद्ध का परिणाम देखने के लिए कहा। "अगर गुफा से गहरा-गाढ़ा रक्त बाहर आया तो भैंसे की मृत्यु हो गयी होगी; परन्तु यदि रक्त हलका और पतला हो तो समझ

लेना कि यह मेरा रक्त है, और तब तुम गुफा को बड़े पत्थर से बन्द कर देना जिससे भैंसा बाहर न आ सके।"

भैंसे का वध हो गया, रक्त बाहर बहने लगा। दुर्भाग्यवश उसी समय वर्षा हो गयी और रक्त का रंग सामान्य से हल्का हो गया। तब छोटे भाई ने सोचा कि सुक्रीप की मृत्यु हो गयी है, उसने गुफा का मुंह बंद कर दिया और नगर में जाकर अपने भाई के मरने की घोषणा कर दी। उसने कहा, "अब मैं शासन करूंगा और उसकी पत्नी मेरी पत्नी होगी।" इस बीच सुक्रीप ने गुफा का द्वार खोलने की चेष्टा की परन्तु सफलता न मिली। तब उसने सोचा कि भैंसा तो बहुत मजबूत जानवर होता है, मैं इसका सिर काट डालूंगा और उससे पत्थर को हटा दूंगा, और इस तरकीब से बाहर निकल जाऊंगा। बाहर निकलकर वह घर आया और छोटे भाई से पूछा, "तुमने वैसा क्यों किया?" तो फाली चान ने उत्तर दिया, "भाई, मैंने सोचा, वह आपका रक्त था!" इसपर सुक्रीप उसे मारने को उद्यत हो गया। छोटा भाई झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहता था, इसलिए वह भाग गया। भागते-भागते जब वह बहुत दूर पहुंच गया तो एक स्थान पर ठहरकर रोने लगा। रोते-रोते वह इतना रोया कि उसके आंसुओं से एक नदी बन गयी।[४]

सामने दीवार पर प्रमुख चित्र-शृंखला के नीचे, अलग से एक चित्र बनाया गया है, जिसमें फाली चान पृथ्वी पर घुटनों में सिर दिये बैठा है और उसके आंसुओं की धारा नदी बन कर बही जा रही है। नदी के किनारे पर ऊंचे-ऊंचे वृक्ष उग आये हैं। नदी के दूसरी ओर फा लाक और फा लाम खड़े दिखाई दे रहे हैं। फा लाक खड़े हुए फाली चान से उसके दुःख का कारण पूछ रहे हैं, जबकि फा लाम एक वृक्ष के निकट बैठे हैं। उसी वृक्ष के पीछे उनका घोड़ा पूर्ण रूप से सुसज्जित तैयार खड़ा है, परन्तु अभी वह घास खा रहा है।

४. वियेनत्यान में प्रचलित रामायण-संस्करण में सुग्रीव को बड़ा और बाली को छोटा भाई बनाया गया है। जबकि लुआङ प्रबाङ की कथा वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करती है। इन दोनों संस्करणों में इसी प्रकार की लोकधारणाओं पर आधारित कई अन्य भेद हैं।

(यह चित्र महत्त्वपूर्ण है, अतएव मन्दिर में इसकी यथार्थ अवस्थिति का हम निर्देश करना चाहेंगे। मुख्य द्वार से प्रवेश करके हमने दाहिनी ओर की दीवार से चित्रों को देखना आरंभ किया था। मुख्य द्वार के ठीक सामने भगवान बुद्ध की मिट्टी की प्रतिमा है। दाहिनी ओर की दीवार में एक द्वार और तीन खिड़कियां हैं। बायीं ओर की दीवार पर अंतिम चित्र में थोरफी-प्रसंग अंकित है।)

इस स्थल पर पहुंचकर हमारे मार्गदर्शक महाशील ने कथा के अगले भाग का आरंभ किया। फा इन की पत्नी का शील भंग करने के पश्चात् अपने कुकृत्य का दण्ड भोगने के लिए हाफन सुआन का जन्म इन्थपत्थनखोन के चाओ विरुनहक के घर में हुआ। भगवान बुद्ध की प्रतिमा के ठीक सामने मुख्य द्वार के ऊपर वाली दीवार पर चित्र संख्या (११) में प्रदर्शित वाराणसी नखोन का ही विस्तार किया गया है। फा लाम के पिता थट्टरथ वाराणसी नखोन के शासक हैं। फा लाक और फा लाम दोनों राजकुमार चित्र में अपने पिता से आज्ञा मांग रहे हैं, जिससे वे जाकर रिसि छनक का धनुष उठा सकें।

चित्र संख्या (१६)

पिता की आज्ञा प्राप्त होने पर फा लाक और फा लाम एक ही घोड़े पर सवार होकर चल पड़े। चलते-चलते वे एक मनिकोथ (मणिग्रोध) वृक्ष के निकट पहुंच गये। यह वृक्ष फलों से लदा पड़ा था। फा लाम वृक्ष के ऊपर चढ़कर उसकी गलत शाखा पर पहुंच गये, जिसके कारण उन्होंने दूषित फल खा लिया, और वानर रूप में परिवर्तित हो गये। चित्र में एक मनोहर वृक्ष है, जिसपर बहुत-से वानर दिखाई दे रहे हैं। वानर-योनि में चले जाने के कारण फा लाम अपने भाई के पास नीचे नहीं आ सके। वास्तव में इस वृक्ष के दो भाग थे। एक भाग में जाने से वानर-शरीर प्राप्त होता था, और दूसरे के द्वारा पुनः मानव-शरीर मिल जाता था। एक थेव (देव) ने आकर यह रहस्य फा लाक को बता दिया था। फलस्वरूप उन्होंने फा लाम का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की जिससे वे उन्हें वृक्ष के दूसरे भाग में जाने के लिए कह सकें। लगभग एक महीने तक वे प्रयत्न में लगे रहे। इस बीच में

वानर-रूप फा लाम ने एक वानरी को पत्नी रूप में ग्रहण कर लिया।

अब जैसा कि चित्र संख्या (१३) में बताया गया था, तोतम रिसि की पुत्री फोङ सी नदी में फेंके जाने के बाद जल-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जब वापस लौटी, तो उसकी मां ने उसपर बहुत क्रोध किया क्योंकि उसने अपने पिता को उसके दोनों प्रेमियों के बारे में बता दिया था। फोङ सी को उसकी माता ने अपनी चमत्कारिक विद्या के प्रभाव से वानरी बना दिया था। वही वानरी फोङ सी इस वृक्ष पर रहने लगी थी और अब फा लाम की पत्नी बनी। कुछ समय बाद फा लाम स्वयमेव वृक्ष के दूसरी ओर आ गये, और अपना मानव-रूप धारण कर वहां से चले गये। निश्चित समय पर फोङ सी के गर्भ से उनका पुत्र हनुमोन उत्पन्न हुआ।[५]

चित्र संख्या (१७)

इस घटना के उपरांत, फा लाक और फा लाम छनक के आसोम (आश्रम) में आये। फा लाम धनुष उठाने में सफल हुए और उनका विवाह सीता से हो गया। चित्र में छनक बौद्ध भिक्षु के पीले वस्त्र पहने अपने आश्रम में बैठे हैं। रावण भी विवाह में सम्मिलित होने आया है। चित्र में रावण को अत्यन्त कुरूप चित्रित किया है जो कि उसके स्वभाव एवं चरित्र का सही प्रतिरूप है। वह छनक-कन्या के

५. भारत में रामायण के कतिपय देशी संस्करणों में वायुपुत्र हनुमान को श्रीराम का पुत्र भी माना है। तुलसीदास ने लिखा है, "सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।" (रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, दोहा ३१ के बाद वाली चौपाई) सीता और राम दोनों हनुमान को पुत्रवत् मानते थे। इसके अतिरिक्त भारतीय पुराण-साहित्य में एक अन्य कथा पायी जाती है। इसके अनुसार हनुमान की माता अंजना को अपने पति के साथ दीर्घ कालीन सहवास के बाद भी जब पुत्र-प्राप्ति नहीं हुई तो वे तप करने बैठ गयीं। एक दिन उनकी ध्यानावस्था में एक चील ने उनके सामने एक फल लाकर रख दिया, जिसे खाने से हनुमान की उत्पत्ति हुई। संयोग-वश यह चील कैकेयी को दिये गये यज्ञचरु का एक भाग लेकर उड़ी थी, और उसने इस चरु को उस फल पर गिरा दिया था। अतएव हनुमान श्रीराम के एक अंश से उत्पन्न हुए और उनके पुत्र माने गये।

प्रति आसक्त तो है, परंतु धनुष उठाने में असमर्थ है, अर्थात् सीता द्वारा अपनी संतुष्टि तो चाहता है, परंतु उसकी सच्चरित्रता एवं पवित्रता का भार वहन करने में असमर्थ है। सीडा अपने बहुत ऊंचे केवल एक स्तम्भ पर बने घर के अंदर बैठी हैं। उनके निकट फा लाम हैं, उनका घोड़ा भी पास ही बंधा है। चित्रकार ने यहां इस ऊंचाई द्वारा रावण और सीता के नैतिक आदर्शों की दूरी का दिग्दर्शन कराया है।

चित्र संख्या (१८)

इस चित्र में फा लाक एक घोड़े वाले रथ का सारथित्व कर रहे हैं। रथ के पहियों का रंग लाल है और उनके अरे सुनहले हैं। इस आकर्षक सज्जा को देखकर मन में प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे राजसी रथ और स्वर्गोपम घोड़े किसी समय लाओस में थे? आजकल तो ये लाओस क्या, कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होंगे। परंतु रामायण-कथा भी तो अलौकिक चरित्रों की है। वैसे चरित्र आज कहां उपलब्ध होंगे! कलाकार को पूरा अधिकार है कि वह वस्तुओं के आदर्श रूप को अपनी कृति में प्रस्तुत करे। इन विचारों से छुट्टी पाकर हम फिर चित्रों को देखते हैं। फा लाक जिस रथ का सारथित्व कर रहे हैं, उसमें फा लाम और नांग सीडा बैठी हैं। इस अवसर पर रावण अपने सुवर्ण मृग को उन्हें धोखा देने के लिए भेजता है। मृग सीडा को आकर्षित करता है, वे उसे पाना चाहती हैं।

फा लाम घोड़े पर चढ़ हरिण लाने चले जाते हैं। थोड़ी दूर जाने के बाद फा लाम ने हरिण को बाणविद्ध करना चाहा, परंतु जब वे उसके निकट पहुंचे तो वहां कुछ नहीं था। यह इसलिए हुआ क्योंकि रावण स्वर्ण मृग का रूप रखकर आया था। इसके अतिरिक्त रावण फा लाम की आवाज़ का अनुकरण करके सहायता के लिए चिल्लाया भी था। फा लाक ने वह आवाज़ सुनी, परंतु वे उसे सुनकर जाना नहीं चाहते थे, क्योंकि सीडा के लिए ख़तरा उत्पन्न होता था। नांग सीडा द्वारा विवश किये जाने के कारण उन्हें अपने भाई की सहायता के लिए जाना पड़ा। और इसी बीच हाफन सुआन ने सीडा का अपहरण कर लिया।

चित्र संख्या (१९)

अब हम प्रवेश-द्वार के दायीं ओर की दीवार के चित्रों को देख रहे हैं। इस बड़े चित्र में हाफन सुआन नांग सीडा को लिए जा रहा है; विशाल पक्षी सटायु उसे रोकने की कोशिश कर रहा है। सटायु फा लाम के पिता थट्टरथ का मित्र है। इस चित्र का कलात्मक संतुलन देखते ही बनता है। सटायु की आकृति अत्यंत विशाल है, उसकी तुलना में हाफन सुआन का शरीर एक मक्खी जैसा लगता है। कलाकार ने यहां उसके शरीर के आकार के सिवा उसकी नैतिक क्षुद्रता को अभिव्यक्त किया है। हाफन सुआन सीडा की उंगली से अंगूठी खोल लेता है। यह वही चमत्कारिक मुद्रा है जो सटायु का वध कर सकती है। वह मुद्रिका को पक्षी के शरीर पर फेंक देता है। पक्षी की मृत्यु हो जाती है, परंतु तत्काल नहीं कुछ समय बाद। चित्र में सटायु का मुख पक्षी का है, सिर पर सुंदर शिरस्त्राण है, परंतु उसकी विशाल दीर्घ मनुष्य जैसी भुजाएं हैं जिनमें से पंख उग रहे हैं। सूर्य भयंकर तीव्रता से चमक रहा है, मानो इस समस्त दुर्व्यापार पर आक्रोश प्रकट करता हो। अंतिम दृश्य में जहां रावण सीडा को उठाकर ले जा रहा है, उसका शरीर भी पहले से विशाल और भयंकर दिखाया गया है, यह अपहरण के क्षण में सीडा के मन में उसका भयानक प्रतिबिम्ब है जब सटायु मरणासन्न है और वह असहाय अकेली रह गयी है।

इधर जब दोनों भाइयों ने देखा कि सुवर्ण-मृग असली न होकर मात्र इंद्रजाल था, तो वे उस स्थान पर लौट आए जहां वे सीडा को छोड़कर गये थे; और उन्होंने देखा कि वह वहां नहीं थी। उन्हें जब पता चला कि हाफन सुआन सीडा को चुरा ले गया है, तो उन्होंने उसका पीछा किया। सटायु ने उन्हें हाफन सुआन के दुष्कर्म की सूचना दी थी।

चित्र संख्या (२०)

यह एक बहुत ही छोटा चित्र है। सीता की खोज में जब दोनों भाई रावण का पीछा कर रहे थे, तो वे उसी वन में जा पहुंचे जहां

फाली चान बैठा रो रहा था। दोनों भाई बहुत थक गये थे, अतः वे पानी की खोज करने लगे। एक नदी के किनारे पहुंचकर उन्होंने उसके पानी का स्वाद लिया। पानी खारा था, यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और वे यह जानने की कोशिश करने लगे कि पानी कहां से आ रहा है। खोजते-खोजते उन्हें वह स्थान मिल गया जहां फाली चान के अश्रुओं से नदी बह निकली थी।

फा लाक ने फाली चान की कहानी सुनी, और फिर वे उसे अपने बड़े भाई के पास ले गये। फाली चान ने फा लाम से अपना राज्य पुनः दिलवा देने की प्रार्थना की। उसने उनसे अपने भाई सुग्रीव से युद्ध करने के लिए कहा।

चित्र संख्या (२१)

जब वे सुक्रीप के नगर में पहुंचे (कुक्कुटवदी, थाइ भाषा में इसे खिटकिन कहते हैं, संस्कृत किष्किन्धा), तो उन्होंने फाली चान से सुक्रीप को बाहर आकर युद्ध के लिए निमन्त्रित करने के लिए कहा। चित्र में दोनों भाई सुक्रीप और फाली चान वायु में ऊपर उटकर तलवारों से युद्ध कर रहे हैं। तब उचित अवसर पाकर फा लाम ने उसके बायें पांव में बाण मारा। उसकी मृत्यु हो गयी। चित्र में सुक्रीप हवा में नीचे की ओर गिर रहा है, उसके पांव में फाम लाम का तीर घुसा हुआ है। दाहिनी ओर एक बड़े वृक्ष के पार्श्व में फा लाम अपने अश्व के पास खड़े हैं। चित्र के बायीं ओर आठ सिपाही सैनिक-सज्जा में हैं, उनके पास तलवारें हैं और उनकी बरछियों झण्डे झूल रहे हैं। लाव-विश्वास के अनुसार ये सिपाही लाव-नागरिक हैं जिन्हें श्रीराम की सहायता के लिए भेजा गया है। सिपाहियों के निकट एक मनोहारी वृक्ष है, जिसपर एक कहोक (गिलहरी) विलास कर रही है।

चित्र संख्या (२२)

अपने भाई सुक्रीप की मृत्यु के बाद फाली चान अपने नगर का राजा बना। फा लाक, फा लाम यात्रा करते हुए आगे बढ़ते गये, यहां

तक कि वे उसी मनिकोथ (मणिग्रोध) वृक्ष के निकट आ पहुंचे जहां फा लाम दूषित फल खाने के कारण एक समय के लिए वानर-रूप में परिवर्तित हो गये थे। यह न जानते हुए कि यह वही वृक्ष है, वे दोनों उसके नीचे विश्राम करने लगे। वृक्ष के ऊपर से हनुमोन नाम का वानर—जो वास्तव में फा लाम का पुत्र था, परंतु दोनों अभी एक-दूसरे से अपरिचित थे—फलों की गुठली से दोनों भाइयों को मारने लगा। खेल-खेल में निशाना फा लाक को लग गया, वे जाग पड़े और हनुमोन को भगाने लगे। परंतु भागने के विपरीत हनुमोन नीचे उतर आया और फा लाक का धनुष छीनने की कोशिश करने लगा। इस वानर का साहस और बल देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ; दोनों ने एक-दूसरे से बातचीत की और तब पता चला कि हनुमोन फा लाम का पुत्र था। हनुमोन की माता ने उसे उसके जन्म की कथा बतायी थी।

अब फा लाम ने हनुमोन को सूचित किया कि वे अपनी प्रथम धर्मपत्नी की खोज में जा रहे हैं। (हनुमोन की माता उनकी विधिवत् परिणीता धर्मपत्नी नहीं थीं।)

(इस स्थल की नाटकीयता एवं गंभीरता के कारण हमें थोड़ी देर के लिए अपना चित्रों का अध्ययन स्थगित करना पड़ा। हमने अपने मार्गदर्शक विद्वान् इतिहासवेत्ता महाशील को प्रश्नों के घेरे में बांध दिया। क्योंकि हम श्रीराम के एकपत्नीनिष्ठ आचरण के अभ्यस्त थे और हमारे गले के नीचे उनका यह चित्र किसी तरह नहीं उतर रहा था। उत्तर में वे केवल इतना ही कह पाये कि अपने लाव-ग्रंथों के अध्ययन-स्वरूप वे इतना जानते हैं कि फा लाम के सोलह पत्नियां थीं, जिनमें सीडा प्रथम थीं। उनका भी मत है कि यह सत्य नहीं हो सकता, संभव है किसी आधुनिक कवि ने यह कथा प्रक्षिप्त कर दी हो। उन्होंने यह भी कहा कि मूल रामायण-कथा निस्संदेह भारत से ली गयी थी, परंतु लाओस पहुंचने पर कथा में बहुत-से परिवर्तन किये गये जिससे कि वह लाव-श्रोताओं के लिए यथार्थ हो सके और वे उसे आसानी से समझें।)

चित्रों की ओर जब हम एक बार पुनः मुड़े, तो देखा कि दोनों भाई अलग-अलग दो उपधानों पर सिर रखे शयन कर रहे हैं। लाओस

के उपधान अद्‌भुत त्रिकोणात्मक आकार के, बड़ी कलात्मक सज्जा से परिपूर्ण होते हैं। दोनों किनारों पर सुनहरा काम करके उन्हें बेल-लगे श्वेत एवं लाल पट्टियों वाले आच्छादनों से मढ़ दिया जाता है। उनका अश्व पास ही खड़ा है। हनुमोन ने नांग सीडा की खोज के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया है, परंतु वे तो अतिबली और शक्तिशाली हैं। उन्हें अपने ही अनुपात में एक मजबूत और दृढ़ आधार की आवश्यकता थी जिस पर खड़े होकर वे वायु में छलांग लगा सकें। यदि वे भूमि पर खड़े होकर ऊपर उछलते हैं तो पृथ्वी धंस जायेगी, यदि वे पेड़ पर से कूदते हैं तो वृक्ष ही टूट जायेगा। यह देखकर उनके पिता फा लाम ने कहा, "अच्छा तुम मेरे जानु पर खड़े होकर कूद जाओ।"

इस चित्र में फा लाम पृथ्वी पर बैठे हुए हैं, और हनुमोन उनके जानु पर से उछलने की तैयारी कर रहे हैं। फा लाक वृक्षों के पीछे दिखाई दे रहे हैं। कई प्रकार की छिपकलियां पेड़ों पर चढ़ रही हैं।

अब ऐसा हुआ कि हनुमोन अपने अतिबल के कारण उछलकर वायु में इतनी दूर ऊपर उड़ गये कि लंका नगरी बहुत पीछे छूट गयी और वे रिसि के आस्सोम (आश्रम) में पहुंच गये। चित्र के छोर में हनुमोन एक वृक्ष के ऊपर से उड़ते हुए दिखाई देते हैं।

इस चित्र में लावों का हंसमुख चरित्र, उनकी हास्यप्रियता, मनोविनोद के लिए उनका असंभव स्थितियों की कल्पना कर लेना और इस सबके भीतर से उनकी चमकती हुई रामायण के प्रमुख पात्रों के प्रति निष्कलुष आस्था भली भांति प्रदर्शित हुई है।

चित्र संख्या (२३)

उस रिसि का नाम नारद था। यह रिसि अपनी आंखें नहीं खोलते। क्योंकि यदि वे अपनी आंखें खोलेंगे तो उनकी दृष्टि से सब चीज़ें भस्म हो जाएंगी। परन्तु किसी के आने की आवाज़ सुनकर उन्होंने अपनी आंखें खोल दीं, और हनुमोन जो उनसे लंका की राह पूछने आये थे, उनकी दृष्टि से जलकर भस्म हो गये। तब रिसि अपने चमत्कारी जल से भरे कमण्डलु को खोजने लगे, जिससे उसकी कुछ बूंदें छिड़ककर वे भस्म वस्तु को पुनर्जीवित कर सकें, और इस प्रकार उन्हें ज्ञात हो सके

कि कौन भस्म हुआ है। इस प्रक्रिया से हनुमोन पुनर्जीवित हो गये, रिसि ने भी उन्हें बताया कि वे अपने लक्ष्य से बहुत आगे आ गये हैं अब उन्हें वापस जाना पड़ेगा।[६]

यह सुनकर हनुमोन ने रिसि से कहा कि वे उन्हें अपने पास रात बिताने की अनुमति दे दें। जब अंधेरा हुआ और ठण्ड पड़ने लगी, तो उन्होंने ओढ़ने के लिए एक कम्वल मांगा। रिसि ने उन्हें कम्बल के स्थान पर अपना रूमाल दे दिया। हनुमोन ने कहा, "यह रूमाल क्यों दे रहे हैं ? मेरा शरीर बड़ा है, मुझे एक बड़ा कम्बल चाहिए !" ऐसा कहकर वे अपना आकार बढ़ाने लगे। उन्होंने देखा कि जैसे-जैसे उनका शरीर बढ़ता जाता है, उसके साथ-साथ वह रूमाल भी फैलता जाता है। रिसि ने जब हनुमोन की शक्ति देखी, तो उन्हें भय हुआ कि इस बार छलांग लगाने पर वे पुनः लंग्का से आगे निकल जायेंगे। अतएव उन्होंने उन्हें थका कर उनका बल कम करने की योजना बनायी और रात के समय अपनी बेंत की छड़ी उनके स्नान के पानी में डाल दी। अगले दिन सुबह जब हनुमोन अपना मुंह धो रहे थे, तो बेंत की छड़ी ने एक लम्वी जोंक का रूप ले लिया और वह उनके माथे से चिपक गयी। परिणामस्वरूप जैसे ही और जितनी बार हनुमोन उछलकर वायु में उड़ने का प्रयत्न करते, जोंक रबड़ के छल्ले समान उन्हें खींचकर फिर से जल-पात्र तक ले आती थी ! चित्र में माथे पर लम्बी खिची हुई जोंक से जुड़े हुए हनुमोन जल-पात्र के ऊपर मंडरा रहे हैं। निकट ही एक कुआं है, जिसके ऊपर पानी निकालने के लिए रस्सी रखी हुई है। रस्सी में लोहे का आंकड़ा बंधा है। चित्र के दूसरे भाग में रिसि फलों से लदे पेड़ों के ऊपर उड़ते दिखाई दे रहे हैं—संभवतया वे हनुमोन के प्रातराश के लिए फल एकत्रित कर रहे हैं। क्योंकि हनुमोन की

६. सच्चिदानंद सहाय ने अपने 'फा लाक फा लाम' और 'ग्वाई द्वोरहभी' में इस ऋषि का नाम 'चाओ रिसि ना फाइ' और 'ता बाइ' बताया है। विद्वान् महाशील के अनुसार ऋषि का नाम 'नारद' था। नारद नाम उचित भी प्रतीत होता है, क्योंकि संस्कृत व्याख्या के अनुसार 'नरस्य धर्मो नारं तद् ददाति इति नारदः' जो व्यक्ति मनुष्य को अपने धर्म में प्रतिष्ठित कर दे वह नारद है। नारद यहां वस्तुओं को उनका पूर्व स्वरूप प्रदान करते हैं।

शक्ति देखकर उनको भूख के लिए चिंता करना आवश्यक है ! इस दृश्य में लाव-जनता की स्वाभाविक विनोदी एवं परिहासप्रिय सरल मनोवृत्ति का बहुत ही सजीव चित्रण हुआ है; अद्भुत और रहस्यमयी चमत्कारी परिस्थितियों के प्रति उनका रसमय आकर्षण, साथ-ही-साथ उनका स्वस्थ सामान्य-बोध और सही तर्कबुद्धि भी परिलक्षित हुई है ।

काफी समय बीत जाने पर रिसि ने हनुमोन से कहा, "अब तुम जाँ सकते हो ।" इस प्रकार हनुमोन लंग्का पहुंच गये, वहां उन्होंने नाग सीडा को देखा। वे एक वाटिका में बैठी थीं। यह इसलिए कि हाफन सुआन उन्हें तुरन्त अपने महलों में प्रविष्ट नहीं करा सकता था, उसे डर था कि उसकी पत्नी नांग सीडा को देख लेगी। हनुमोन ने नांग सीडा को समझाया कि "आप मेरे साथ चल कर मेरे पिता[७] से मिलिये।" परंतु सीडा जो एक बात स्वीकार नहीं कर सकती थीं, वह थी कि कोई पर-पुरुष उनके शरीर का स्पर्श करे। हनुमोन की पीठ पर चढ़कर जाने से उन्हें उनके शरीर का स्पर्श करना पड़ता। अतएव उन्होंने हनुमोन से अकेले वापस लौट जाने के लिये कहा, और कहा कि वे जाकर अपने पिता से कह दें कि यदि वे मुझे वापस लौटाना चाहते हैं तो उन्हें आकर हाफन सुआन से युद्ध करना पड़ेगा ।

नांग सीडा ने हाफन की पत्नी बनना स्वीकार नहीं किया। हाफन उनके निकट आने का प्रयत्न करता था, परंतु वह उन्हें छू नहीं सकता था। क्योंकि उनका व्यक्तित्व अग्नि के समान प्रखर और प्रज्वलित था।[८] तब हनुमोन वापस लौटने और फा लाम को स्थिति की सूचना देने के लिए सहमत हो गये। परन्तु वापस लौटने से पहले उन्होंने लंग्का के उपवनों को नष्ट कर दिया।

७. मेरे पिता अर्थात् श्रीराम, जो उनके पिता थे। देखें चित्र संख्या (२२)

८. महाशील के अनुसार सीता के शरीर का तापमान अग्नि के समान जल रहा था, इससे रावण उनके निकट नहीं जा सका। यहां सीता के सतीत्व और तेजस्विता का पता तो चलता ही है, साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि इस प्रकार लाव-कथाकार ने सीता की अग्नि-परीक्षा की ओर भी संकेत किया है, रामायण-कथा में जिसका सही संदर्भ विस्मृत हो चुका था।

चित्र संख्या (२४)

यह एक छोटा-सा चित्र है। हनुमोन लंग्का-दहन कर रहे हैं। इससे पूर्व हनुमोन जब रावण के उपवन नष्ट कर रहे थे, तब सुरक्षा पर तैनात एक सिपाही ने देखा कि एक छोटा-सा वानर वृक्षों की डालियां तोड़ रहा है। उसने इसकी सूचना हाफन सुआन को दी, यह सुनते ही हाफन ने वानर को तुरंत अपने सामने उपस्थित करने का आदेश दिया। हनुमोन यद्यपि अत्यंत बलशाली थे, फिर भी उन्होंने अपने आपको पकड़ में आ जाने दिया। हाफन ने सुरक्षा-अधिकारियों को उन्हें मार डालने का आदेश दिया। परंतु बहुत प्रयत्न करने पर भी वे उन्हें मार न सके। तब हनुमोन ने उन्हें सुझाव दिया कि वे उनके समस्त शरीर को कपड़े में लपेट कर उसे तेल में भिगोएं और फिर उसमें आग लगा दें। रक्षकों ने वैसा ही किया और इस तरकीब से हनुमोन ने अपने जलते शरीर से पूरी लंग्का जला डाली।

इस छोटे से चित्र में लंका-नगरी जल रही है, और हनुमोन प्रसन्न मन से एक स्वर्ण-शिखर की नोक पर चढ़े बैठे हैं। अग्निदेव की जिह्वा समान लपटों के समूह चारों ओर से उठ रहे हैं, जिन्हें अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ऊपर से गहरे लाल रंग से रंग दिया गया है।

चित्र संख्या (२५)

यहां फाली चान की सेना फा लाम की सहायता के लिए प्रयाण कर रही है। अनेक घोड़ों और सैनिकों सहित एक बड़ी सेना दिखाई गयी है। सैनिकों के मुख तो बंदरों की भांति हैं, परन्तु उनके शरीर मानवीय हैं। फाली चान अपने रथ पर अकेले हैं, उनके रथ में दो घोड़े हैं। फाली चान का सारथि अलग से दूसरे घोड़े पर सवार दिखाई पड़ रहा है। उनके सैनिक तलवारों और भालों से लैस हैं।

फा लाक और फा लाम दूसरे रथ पर सवार हैं, उसमें भी दो घोड़े जुते हैं। उनका सारथि भी अलग घोड़े पर चल रहा है। इन दोनों रथों के बीच वानरों की सेना है, यह सेना फा लाक फा लाम की है। फाली

चान की पताका गहरी नीली है। फा लाम की पताका का रंग पीला है[१] और उस पर ये शब्द अंकित हैं—"फा लाक फा लाम की सेना।" फा लाम के रथ के निकट साधारण बंदरों का बड़ा-सा झुण्ड है। इन सब का नेतृत्व हनुमोन अपने रथ पर चढ़े हुए कर रहे हैं—उनके झण्डे का रंग सिंदूरी है और उसपर उनका नाम अंकित है। हनुमोन के रथ में भी दो घोड़े हैं और उनका सारथि अलग घोड़े पर है। हनुमोन हाथ में त्रिशूल थामे हैं।

युद्ध के लिए तैयार फाली चान और फा लाम की सेनाओं का यह चित्रफलक आकार में बहुत बड़ा और कल्पनाशील है। बुद्ध-प्रतिमा के ठीक पीछे लगभग बीस फुट चौड़ी दीवार समूची इसी एक चित्र द्वारा घिरी हुई है। चित्र के आगे बुद्ध की प्रतिमा है। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकार ने युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनाओं के इस विशाल चित्र की परिकल्पना जानबूझ कर भगवान् बुद्ध की मूर्ति को उभारने के लिए की थी। मूर्ति में अनुशास्ता का सौम्य मुखमण्डल, उनकी करुणार्द्र-नयन दृष्टि और अदृश्य में विलीन होती उनकी अमूर्त्त मुस्कान ये सब पृष्ठभूमि में लड़ाई की तैयारियों के माहौल से अधिक सजीवता से उभर कर ऊपर आ सके हैं और युद्ध की क्रूरता और निष्फलता पर दर्शक को सोचने को बाध्य करते हैं।

जिस समय सेनाएं लड़ाई की तैयारियां कर रही थीं, तभी एक यक्सिनी (यक्षिणी) नांग फी सिआ समुद (लंका के निकट समुद्र की रक्षा के लिए नियुक्त) उस स्थान पर अवतरित हुई। वह दूर से इस चित्र के एक कोने में दिखाई गयी है। उसका नीलवर्ण का बृहत्काय

१. दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में देवताओं के रंग-प्रतीकों का बड़ी निष्ठा से पालन किया जाता है। विष्णु के अवतार पीत वस्त्र धारण करते हैं, इसलिए श्री-राम की पताका पीली है। हनुमान को सिंदूरी रंग प्रिय है, अतः उनकी पताका सिंदूरी है। हनुमान के सिन्दूरी रंग प्रिय होने की भी एक रोचक कथा है। एक दिन हनुमान ने श्रीसीता से उनके मांग में सिंदूर डालने का कारण पूछा। उन्होंने कहा, "क्योंकि यह तुम्हारे स्वामी श्रीराम को प्रिय है।" इतना सुनकर श्री हनुमान ने कपि-स्वभाव के कारण अपने सारे शरीर पर सिंदूर मल लिया। यह कथा भारतीय है, परंतु इसकी अनुगूंज लाओस में विद्यमान है।

शरीर है, जिसमें से उसके भारी-भरकम स्तन बाहर को गिरे-से पड़ रहे हैं। यह स्त्री हाफन सुआन की मित्र है और फा लाम की सेनाओं का मुकाबला करने आयी है। हनुमोन, जिन्हें इस स्थल पर हुल्लमान भी कहते हैं, अपने त्रिशूल को ऊपर उठाए हुए यक्षिणी के ऊपर उड़ते हुए दिखाई देते हैं।

चित्र संख्या (२६)

अगले छोटे चित्र में यक्षिणी मृत पड़ी है। इस घटना के बाद हाफन सुआन ने अपने सेनापति फन्या सिन हुआ को लंका की रक्षा करने भेजा। एक छोटे चित्र में समस्त लंका नगरी फन्या सिन हुआ की फैली हुई जिह्वा से घिरी हुई दिखाई देती है। हुल्लमान अपने त्रिशूल से इस जिह्वा का छेदन कर रहे हैं। सिन हुआ की मृत्यु हो जाती है। सिन हुआ की जिह्वा का रंग मटमैले गेरुए रंग जैसा है।[१०]

चित्र संख्या (२७)

यह एक बड़ा चित्र है जिसमें हाफन सुआन विभेक (विभीषण) को सशरीर उठाकर अपने राजमहल से बाहर फेंक रहा है। चित्र के दूसरी ओर कमल के फूलों से भरा हुआ आकाश की नीलिमा को प्रतिबिम्बित करता हुआ एक सरोवर है; फा लाक, फा लाम और हुल्लमान इस सरोवर के किनारे खड़े हैं। वे विभेक को ग्रहण कर लेते हैं। फा लाम की वेश-भूषा सुंदर और घुमावदार है, जो पैरों के निकट आकर पंखों का आभास देती है। ऐसा लगता है उनके चरणों के ऊपर से दो पंख निकल रहे हैं, परंतु वास्तव में वे पंख नहीं हैं। इस चित्र में फा लाम

१०. सिन हुआ लाओस, थाइलैंड और कम्बोदिया में विद्युज्जिह्व का ही प्रतिरूप है। विद्युज्जिह्व शूर्पणखा का पति और रावण का बहनोई था। रावण ने क्रुद्ध होकर उसकी हत्या कर दी थी। संभवतया उसके नाम के कारण लाओस और पड़ोसी देशों ने उसकी जीभ के बढ़ते और लम्बे होते जाने की कल्पना कर ली है।

को अत्यन्त सुन्दर दिखाया गया है।[11] अन्य चित्रों में उनकी आकृति बहुत कुछ लाव है; यहां उनके नख-शिख भारतीय हैं। फा लाक भी कम सुन्दर नहीं हैं—उन्नत नासिका, सुन्दर ललाट, करुणार्द्र नयन। दोनों भाइयों की आकृतियां अत्यंत लुभावनी हैं। निकट ही हनुमोन बिभेक को अपने दोनों हाथों से थामे उनका स्वागत कर रहे हैं। हाफन सुआन ने जब बिभेक को उठाकर राजमहल से बाहर फेंका, उस समय उसके छह सभासद उसके साथ थे। इस चित्र में उसके राजमहल को अत्यंत भव्य दर्शाया गया है, उसकी बहुपटली छतें ऊपर की ओर मुड़ती हुई किसी लाव-मंदिर के ऊर्ध्व भाग जैसी दिखाई पड़ती हैं। बिभेक के निष्कासन का कारण यही था कि उसने नांग सीडा को लौटा देने की सिफारिश की थी। लाव-रामायण के अनुसार बिभेक रावण का पुत्र है। थाइलैण्ड में उसे, जैसा वाल्मीकि रामायण में वर्णित है, रावण का छोटा भाई माना गया है। चित्र में बिभेक का आकार बिलकुल एक छोटे बच्चे जैसा है, तथा उनके शरीर को रेखाओं से अंकित कर बिना रंगे छोड़ दिया गया है। समस्त चित्र-शृंखला में ऐसा कहीं और नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विधा से कलाकार ने रावण द्वारा बिभेक के व्यक्तित्व और आत्मसम्मान के अपहरण कर लेने की दुःखदायी एवं शून्यता की स्थिति का चित्रण किया है। यहां बिभेक व्यक्ति न होकर उस सामूहिक आध्यात्मिक विध्वंस और पीड़ा का प्रतीक-मात्र है जो उन लोगों को सहनी पड़ती थी जो हाफन सुआन के

११. वाल्मीकि-रामायण में विभीषण जब राम के पास आते हैं, उस समय केवल युद्ध-सम्बन्धी बातें होती हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों रामकथा अपने मूल से दूर होती गयी, उसमें बहुत-सी अन्य बातों के साथ, लोकाराधना हेतु श्रीराम की शारीरिक छवि का वर्णन अधिक होता गया। इस चित्र को देखकर 'रामचरितमानस' के वे शब्द याद आ जाते हैं जो गोस्वामी तुलसीदास ने विभीषण के श्रीराम के प्रथम दर्शन के समय कहे थे, "दूरहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता।। बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी।। भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत-भय-मोचन।।···" स्वाभाविक है कि रावण के विकराल स्वरूप से भागकर जब विभीषण श्रीराम के पास आये तो उन्हें राम सुन्दर दिखाई दिये। यहां उन्हें शरण जो लेनी थी।

अभिमान और कुतर्कपूर्ण आत्मविनाशी हठ से टकराने का साहस करते थे। चित्र में कलाकार ने अपनी स्नेहमयी करुणा से बिभेक के छायावशेष शरीर को हरे-भरे पर्वतों और उपवनों से घेर दिया है। ऐसा लगता है ये पर्वत, वृक्ष और लताएं श्रीराम की शरण में जाने से पूर्व, बिभेक को संरक्षण प्रदान कर रही हैं।

चित्र संख्या (२८)

यहां हाफन सुआन की सेना फा लाक, फा लाम की सेनाओं से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध खड़ी हैं। उसके सैनिकों की आकृति भयंकर है, उनके शरीर पर गहरे नीले रंग के कंचुक हैं और वे लाल रंग के जानुरक्षक पहने हैं जिनमें पीली गोट लगी है। वे नंगे पांव हैं, उनके हाथों में भारी गदा, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्र हैं। इनके झण्डे लाल रंग के हैं। हाफन सुआन अपने दो घोड़ों वाले रथ पर सवार है। उसका सारथि अलग घोड़े पर चल रहा है। चारों ओर घना जंगल है। कुछ सैनिक घोड़ों पर भी सवार हैं। हाफन सुआन का रथ खूब सजा हुआ है, उसके ऊपर लाल रेशमी छत्र अथवा चंदोवा टंगा हुआ है जो कि उसके राजा होने का प्रतीक है। उसके कतिपय अंगरक्षक पीली गोट वाले गहरे बादामी कंचुक और लाल जानुरक्षक पहने हैं। वे लाल रंग के घोड़ों पर सवार हैं।

चित्र संख्या (२९)

यह एक महत्वाकांक्षी चित्र है। बहुत बड़े विशाल फलक पर दोनों सेनाओं के बीच युद्ध की स्थिति दिखाई गयी है। युद्धगत समूहों को इस प्रकार रखा गया है :

फाली चान कुंभकान से लड़ रहे हैं। उनके पास छोटी कटारें और धनुष हैं। फाली चान धनुष से युद्ध कर रहे हैं।

हुल्लमान एक अन्य सेनापति से जूझ रहे हैं। सेनापति का नाम ज्ञात नहीं है। ये दोनों गदा और त्रिशूल से लड़ते हैं। हुल्लमान अपनी

भारतीय परम्परा के अनुसार गदा से युद्ध करते हैं।[१२]

फा लाक का युद्ध एक तीसरे महारथी से हो रहा है इनका नाम भी यद्यपि ज्ञात नहीं है, फिर भी बहुत करके ये इंद्रजीत (मेघनाद, रावण के पुत्र) हैं। ये दोनों धनुषों (लाव-भाषा में खानसोम) से युद्ध कर रहे हैं।

चित्र के अधोभाग में फा लाम की सेना के वानर हाफन के सैनिकों से गुत्थम-गुत्था हो रहे हैं। उनके युद्ध की भंगिमाएं बहुत क्रूर और भयानक नहीं हैं। वे कोमल तरंगायित मुद्राएं हैं मानों किसी लाव-नृत्यनाटिका के शिल्प-विन्यास का एक अंश हों। वानरों की मुद्राएं विशेष रूप से कलात्मक और आकर्षक हैं। जैसे कि युद्ध के बीच में ही एक वानर मुड़कर अपनी पूंछ खुजलाने लगता है। युद्ध का स्थल लंका है। हुल्लमान ने समुद्र के ऊपर पत्थरों का एक सेतु बना दिया है, जिससे फा लाक फा लाम की सेनाएं दूसरी ओर जा सकें।

चित्र संख्या (३०)

यह अपेक्षाकृत छोटा चित्र है। यहां हनुमोन अपने सुदृढ़ हाथों में एक पर्वतखंड उठाए चले आ रहे हैं, इसी पर्वतखंड में औषधि (संजीवनी बूटी) है। हनुमोन ने अपनी असीम शक्ति से पर्वत की कन्दरा के भीतर से इस शिला को उखाड़ा है और वे उसे हृदय से लगाये आकाश में उड़ रहे हैं। हुआ यह कि जब हनुमोन औषधि खोजने गये, तो औषधि पत्थरों के नीचे दब गयी। वे जब नीचे की ओर गये तो औषधि ऊपर उठ गयी। अब उनके पास और कोई दूसरा विकल्प नहीं था, सिवाय इसके कि वे पूरे पर्वतखंड को उठाकर ले आएं। औषधि फा लाक के

१२. भारतीय परम्परा के अनुसार हनुमान और पाण्डवों के भ्राता भीम दोनों वायु के पुत्र हैं, और दोनों ही गदा से युद्ध करते हैं। इन्दोनीसिया की वायाङ परम्परा में इस नाटकीय अन्विति का निर्वाह पात्रों की वेषभूषा द्वारा किया जाता है। वायाङ नाटकों में हनुमान और भीम दोनों के अधोवस्त्रों की परिकल्पना शतरंज के फलक समान सफेद और काले चतुष्कोणों की होती है। इन्दोनीसिया में वायुदेवता भी ऐसी ही काले सफेद चतुष्कोणों वाली पोशाक में अवतरित होते हैं।

लिये थी, जिन्हें लड़ाई में चोट लग गयी थी। हनुमोन के चरित्र और उनके काम करने के तरीकों से लाव-जनता का सहज हंसमुख स्वभाव, हास्य-विनोद करने और जीवन का स्वाभाविक आनंद लेने की प्रवृत्ति का पता चलता है।

चित्र संख्या (३१)

हाफन सुआन की फा लाम के हाथों मृत्यु हो जाती है। फा लाम अपनी राजधानी की ओर लौट रहे हैं, नांग सीडा उनके साथ हैं। चित्र में फा लाम रथ पर आरूढ़ वाराणसी की ओर जा रहे हैं। रथ में दो घोड़े जुते हैं। इस बार फा लाम की पताका लाल और हल्के सुर-मई रंग की है। रथ का संचालन वे स्वयं कर रहे हैं। पीछे से दूसरे घोड़े पर सवार फा लाक चल रहे हैं। सबसे पीछे-पीछे हुल्लमान हैं, वे रथ पर सवार हैं।

चित्र के निचले भाग में सैनिक गण तथा वानर-सेना है। ये सब मिलकर आपस में हास्य-विनोद में तल्लीन हैं। कथा का यह अन्त लाव-प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। लाम, लाक, हाफन कथा के मुख्य पात्र सब लाव-जीवन की सहजता में तिरोहित हो गये हैं। रह गया है सहज स्वाभाविक जीवन का वह सरोवर जिसमें उठती, खेलती, खिल-खिलाती लहरें, जो जीवन के प्रति लाओस के शिशुतुल्य दृष्टिकोण का इतनी सरलता से प्रतिनिधित्व करती हैं।

●●●

